वर्ष ४

# भक्ति

संख्या ८

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

वैसाख सम्वत् १९८७

## भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी
लेफ्टेनेन्ट सरदार रघुबीरसिंह जी सांधोवालिया राजा सांसी अमृतसर
पं जैनारायण जी भोड़ाकला, गुड़गावां
धर्म सीह मावजी जेठवा कालरोप्रोप्राइटर झरिया
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ ऐग्रीकलचर लाहौर
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ, बी, ई, रामपुरा
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा
ला० जोहरी मलजी रेवाड़ी
सठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा
मुक्खी चगड़ूमल बलिराम जी भटिण्डा
सर आपा राव सातोले साहिब सी एस. ई. के. बी. ई. रेवेन्यू मेम्बर गवालियर
प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली
राव श्रीराम जी रईस नांगल
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास
बाई लक्ष्मादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी, रईस नांगल
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा
लाला दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली
श्री भक्तावरीदेवी धर्मपत्नी लाला नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी
श्रीमती गणपतिदेवी धर्मपत्नी लाला गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज
राव गजराजसिंह जी बी, ए, एल, एल, बी; गुड़गावां
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद
प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाड़ी
ऐस, जे, राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट,
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली
पी, एन, कौल बैरिस्टर दवान भूतपूर्व दिवास स्टेट लाहौर
चौधरी जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट झंग
लाला कृष्णलाल जी जींद
लाला भागीरथमल कटरा लच्छूसिंह देहली

१११)
१११)
११०)
१०१)
१०१)
"
"
५१)
५१)
५१)
५१)
५१)
५१)
४२)
२५)
२५)
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"
२५)
२१)

## सहायक

| | | | |
|---|---|---|---|
| पिं. टी. शाह जयपुर | १३) | सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी | ५) |
| जमादार उमरावसिं ; भाडावास | ११) | जमादार दीपचनद जी | ५) |
| राव साहब चौधरी हेतराम जी दौलतपुर | ११) | लाला ओंकारमल जी कानपुर | ५) |
| चौधरी हुकमासह जी निखरी | ११) | चौधरी दौलतराम जी पटवारी नाहरी | ५) |
| पण्डित जगन्नाथ जी रेवाड़ी | ११) | लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेमहाउस, दिल्ली | ,, |
| लाला अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी | ११) | बाबू रामस्वरूप गनेश मील ,, | ५) |
| चौधरी गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा | ११) | पण्डित मथुराप्रसाद जी जमालपुर | ,, |
| चौधरी मनोहरसिंह जी ,, पालहावास, | ,, | लाला न्यादरमल जी दिल्ली | ,, |
| लाला छोटेलाल घासीराम जी दिल्ली | ,, | लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,, | ,, |
| लाला सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली | ,, | लाला प्रभुदयाल जी फरुखनगर | ,, |
| चौधरी इन्द्रसिंह जी सिरहोल | १० | त्रिवेणीदेवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास खरक | ,, |
| बाबू शिवरामसिंह जी गढीबोलनी | ७) | लाला श्रीराम जी गुप्ता भटिण्डा | ,, |
| माई गुलाबोदेवी दिल्ली | ५) | बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां | ,, |
| लाला बनारसीदास दिल्ली | ५) | रा०सा० ला० सेवकराम एम, एल, सी- लाहौर | ,, |
| महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी | ५) | पं, नानकचन्द एम, एल. सी लाहौर | ,, |
| श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ । | ५) | श्रीमान् धानी चन्द लाहौर | ५) |
| श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली | ५) | श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी | ५) |
| रा० ब० लेखनारायण सिंह जी बाढ, पटना | ५) | श्रीमती दुर्गीदेवी भिवानी | ५) |
| रा०सा० बाकेबिहारीलालजी तहसीलदार चिडावा | ५) | डाक्टर कुन्तलकुमारी दिल्ली | ५) |
| बा० बैजनाथसिंह थनेंगयोंग, बर्मा | ५) | हवलदार ठाकरसिंह मूसपुर | ५) |
| ठाकुर भूरसिंह खण्डेला, जयपुर | ,, | सूरजमल सुरोलिया खेतड़ी | ५) |
| डड़िया बाबा, मन्दिर श्री दादी जी खेतड़ी | ,, | भूरसिंह माजरा, अलवर | ,, |
| | | मोहकमसिंह बाघणकी | ,, |

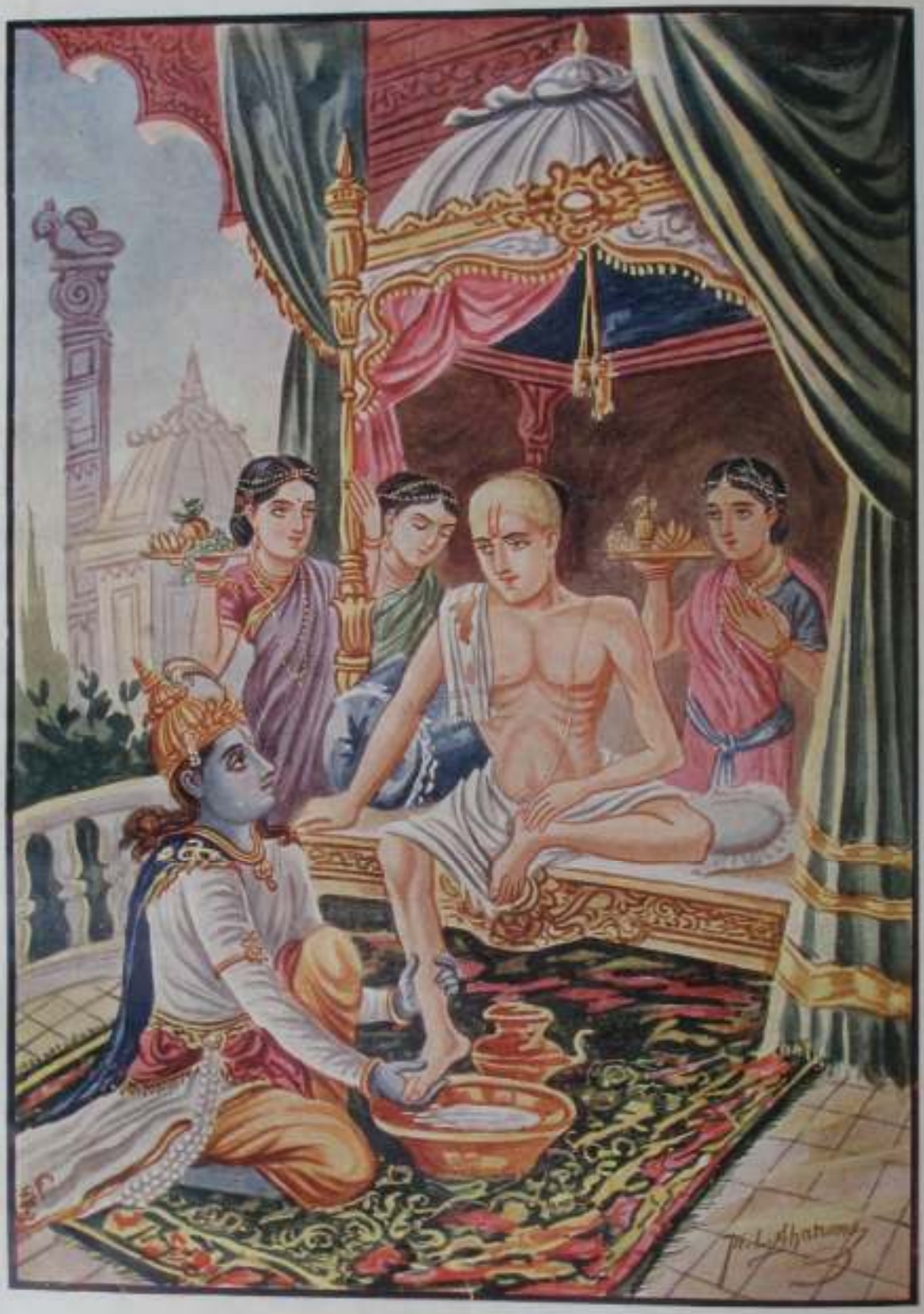

सख्य-भक्त—सुदामाजी और श्रीकृष्ण

GitaPress, Gorakhpur.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ४ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैशाख पूर्णिमा सं० १९८७ | अङ्क ८

# वेदोपदेश

अद्भ्यःसम्भृतः पृथिव्यैरसाच्चविश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्यत्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्यदेवत्वमाजानमग्रे ॥ १ ॥

पृथ्वी और जलों से [ अर्थात् पंच भूतों से जो रस पुष्ट हुआ और जिस का विश्व कर्म है उस काल की प्रीति का रस सब से पहले हुआ उस रस को रूपधारण करता हुआ आदित्य प्रति दिन प्राप्त होता है प्रथम मनुष्य रूप उस पुरुष मेघ याज्ञी के सूर्य्य रूप से मुख्य उस देवत्व को प्राप्त करता है ॥ १ ॥

वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेतिनान्यःपन्थाविद्यतेऽयनाय ॥ २ ॥

मैं इस महान् आदित्य स्वरूप [ अन्धकार से परे ] परमात्मा पुरुष को जानता हूं उसी को जान कर मृत्यु को लांघ जाता है ( अर्थात् मुक्ति पाता है ) और कोई मार्ग कल्याण का नहीं है ॥ २ ॥

**प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तरजायमानो बहुधाविजायते ।**
**तस्ययोनिंपरिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्हतस्थुर्भुवनानिविश्वा ॥**

प्रजापति परमात्मा गर्भ में प्रविष्ट होता है, जन्म रहित होने पर भी बहुरूप से उत्पन्न होता है - उस परमात्मा के स्वरूप को ब्रह्मज्ञानी साक्षात्कार करते हैं-उसी में सब लोक स्थित हैं ॥ ३ ॥

**योदेवेभ्यआतपतियोदेवानां पुरोहितः ।**
**पूर्वो योदेवेभ्यो जातो नमोरुचायब्राह्मये ॥ ४ ॥**

जो प्रजापति परमात्मा देवताओं के निमित्त सब ओर से प्रकाशित होता है-जो देवताओं का भी पूज्य है जो देवताओं से पहिले प्रकट हुआ उस देदीप्यमान ब्रह्म को नमस्कार है ॥ ४ ॥

**रुचम्ब्राह्मञ्जनयन्तो देवाअग्रेतदब्रुवन् ।**
**यस्त्वैवं ब्राह्मणोविद्यात्तस्यदेवाऽअसन्वशे ॥ ५ ॥**

इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं ने प्रकाश स्वरूप ब्रह्म को प्रकट करते हुये उसके सन्मुख यह बात कही-जो ब्राह्मण तुम को उक्त प्रकार से जानते हैं-उस के वश में देवता होतेहैं ॥ १० ॥

# भक्त बन्धु महांति

उड़ीसा प्रान्त के याजपुर नामक ग्राम में एक जीर्ण पर्णकुटी में बन्धु महान्ति नाम के एक भक्त निवास करते थे। घर में एक स्त्री, दो छोटे छोटे पुत्र तथा दो कन्यायें थीं। बन्धु महान्ति नगर में भिक्षा मांगने से जो कुछ मिल जाता उसी से घर में आये हुये अतिथि का सत्कार करने के बाद बालकों को भोजन करा कर जो कुछ बच जाता उसी को स्त्री सहित पाकर सन्तोष मानते और सदा भगवान् के जप ध्यान में निमग्न रहते। इस प्रकार कभी कभी उनको निराहार भी रहना पड़ जाता लेकिन इससे वे कोई दुःख नहीं मानते।

इस तरह कुछ समय बीत गया। जिस तरह स्वर्ण तपा कर ही शुद्ध किया जाता है उसी प्रकार भगवान् भी अपने भक्त को तपा कर शुद्ध किये बिना नहीं छोड़ते। एक समय बन्धु को तीन दिवस तक कुछ भी भिक्षा नहीं मिली। ग्राम में अकाल पड़ गया था, वृक्षों पर पत्ते भी देखने को नहीं थे, घास के बिना पशु मरने लगे और अकाल के परिवार प्लेग

महामारी आदि से भी सब बड़े दुःखी होने लगे। बन्धु के बालक भूख के मारे छटपटाने लगे। बालकों की ऐसी स्थिति देख कर बंधु स्त्री सहित भिक्षा के लिये निकले आस पास के गांवो में भी हो आये परन्तु एक दाना भी नहीं मिला। माता पिता को खाली हाथ लौटते देख कर बालकों के दुःख का पार नहीं रहा और पत्नी भी अपने बालकों को भूख के मारे इस तरह विलाप करते देख उनके दुःख को सहन नहीं कर सकी।

माता बालकों की करुणा जनक स्थिति से व्याकुल हो पति से कहने लगी, "नाथ। क्या आपके ऐसा कोई भी सखा नहीं है जो ऐसे विपत्ति के समय हम लोगों को आश्रय दे। बन्धु अपनी स्त्री के वचन सुन कर थोड़ी देर विचार कर बोले कि सती! मेरा एक मित्र है जो बहुत दूर देश में रहता है। उसके पास पहुंचने में चार पांच दिन लगेंगे वहां चलने पर फिर किसी प्रकार का भी दुःख दारिद्र्य ठहर नहीं सकता। पति के आश्वासन जनक वाक्य से सती को बहुत कुछ धीरज हुवा। उसने पूछा "स्वामी! आपके सखा कौन हैं और वे कहां रहते हैं"? यह सुनते ही बन्धु के नेत्रों में प्रेम से आंसु झलक आये और कहने लगे, "मेरे सखा का नाम है दीनबन्धु! उनका काम ही दीन हीनों का रक्षण और पालन पोषण करना है। उनका निवास स्थान है नीलाचल"*।

इधर स्त्री चलने की तैयारी करने लगी और इधर बन्धु विचारने लगे, "नाथ! मृत्यु भय से स्वदेश छोड़ना कितनी महान मूर्खता है। लेकिन प्रभो! इसी बहाने आपके दर्शन कर नेत्रों को सफल करूंगा। हे नीलाचल नाथ! कब वह शुभ लग्न आवेगा, जब जी भरके आपके दर्शन कर कृतार्थ होऊंगा"। इस प्रकार विचार ही रहे थे कि उनकी स्त्री बालकों को लिये हुये नीलाचल चलने के लिये पति के सन्मुख आ उपस्थित हुई। हाथ में जल पात्र और कंधे पर कम्बल रख छोटे बालकों को गोदी में लेकर बड़ों को कंधे पर बैठा कर पति पत्नी दोनों नीलाचल की तरफ रवाना हुये।

रास्ते में भी कोई भिक्षा न मिली। केवल शाक पात खाकर ही काम निकालना पड़ा इस प्रकार चलते चलते पांचवें दिन संध्या को बन्धु अपने परिवार सहित श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में जगन्नाथजी में आ पहुंचे। दूर से जगन्नाथ जी का मंदिर देखते ही बन्धु की भूख प्यास जाती रही और गद्गद् स्वर से पत्नी को कहने लगे, "देख, मेरे मित्र का मंदिर"। बंधु के वचन सुन कर उनकी पत्नी का अन्तःकरण आनन्द से भर गया और 'अब बालकों की जीवन रक्षा होगी' इस नवीन आशा से उसका मलीन वदन प्रफुल्लित हो गया। प्यास के मारे सूखने से उसके मुंह से एक भी शब्द न निकला। अब वे उत्साह पूर्वक जल्दी जल्दी चलने लगे और देखते ही देखते सिंह द्वार पर आ पहुंचे। सिंह द्वार पर इतनी ज्यादा भीड़ थी कि बन्धु अपने बालकों को ले भीतर प्रवेश ही नहीं कर सके। बाहर से ही पतित पावन भगवान् श्रीजगन्नाथजी के दर्शन कर चर्म चक्षुओं को सार्थक किया और दक्षिणकी तरफ जहां भगवान् का चरणामृत निकलने का मार्ग था वहां जाकर एक कोने में स्त्री व बालकों सहित बैठ गये।

थकावट के मारे थोड़ी देर तक किसी के मुंह से कोई वचन नहीं निकला। थोड़ी देर में बन्धु की

* नीलाचल जगन्नाथपुरी का नाम है

भोली भाली स्त्री मौन तोड़ कर पति को संबोधन कर इस प्रकार कहने लगी, "स्वामिन्! मित्र के घर आकर भी इस प्रकार कोने में क्यों बैठ गये? देखिये! सन्ध्या हो चली है, थोड़ी देर में अंधकार हो जायगा तब इन बालकों को लेकर कहां चलेंगे? इसलिये अब शीघ्र ही अपने मित्र के पास जाकर भोजनादि का प्रबन्ध कर आइये"। उसी समय उनके बड़े बालक भी खाने के लिये रोने लगे। बन्धु महान्ति बोले, "साध्वी! हम लोगों को यहां पहुंचने में बड़ी देर हो गई इसलिये आज मित्र से मिलाप होना कठिन है। दूसरे आज देश देशान्तर से अन्य बन्धु भी बहुत से आये हैं इस वास्ते भीड़ में यदि जाने का प्रयत्न करूं तो धक्कों में पिस जाऊं। इसलिये आज का दिन तो केवल चरणामृत लेकर बिताओ, कल प्रातः मैं अपने मित्र के पास जाकर मिलूंगा"।

बंधुके कहने के अनुसार सब कोई उस रात श्रद्धा पूर्वक केवल चरणामृत पान कर सो रहे, और अति थकावट के कारण पड़ते ही निद्रा आ गई। बंधु भी भगवान् की स्तुति कर सो रहे।

रात्रि होगई। जगन्नाथ जी के मन्दिर के कार्यकर्ता पुजारी पंडे अपना अपना काम समाप्त कर भगवान् की शयन आर्ती कर उन्हें शयन कराया। भंडार के भी ताला बंद कर दिया एवं और जगह भी जहां जहां ताले बंद करने थे करके सील मोहर लगा सब अपने अपने घर चले गये। अपने नित्य कृत्य के अनुसार वे बिचारे अपनी जान में भगवान् को शयन करा गये। लेकिन भक्त हितकारी, भव भयहारी दीनबन्धु, दयासिंधु, भगवान् को अपने भक्त को इस तरह भूखा पड़ा छोड़ कैसे नींद आ सकती थी। वे झट शय्या का त्याग कर स्वयं भंडार में आये और रत्न जड़ित अमूल्य थाल में विविध प्रकार की भोजन सामग्री रख दक्षिण दरवाजे के बाहर चले आये। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भगवान् को उनकी माया के कृत्रिम ताले कैसे रोक सकते थे। बाहर आकर अपने परम भक्त सखा बन्धु को पुकारने लगे। बन्धु अपना नाम सुन कर चौंक कर जाग पड़े लेकिन फिर विचारने लगे कि क्या मेरे सिवाय कोई दूसरा बंधु इस जगत में और नहीं होगा? भला मुझे यहां कौन पुकारता? इस तरह विचार करते करते बन्धु फिर सो गया। लेकिन अन्तर्यामी भगवान् भक्त के मनकी कल्पना जान कर फिर जोर से बंधु के आगे महान्ति और उसके ग्राम का नाम और कह कर पुकारने लगे जिससे कि उसे फिर सन्देह न रह जाय। अबकी 'ओ! याजपुरी का बन्धु महान्ति' सुनकर बन्धु फिर चौंक उठा और निश्चय पूर्वक उठ कर जिस तरफ से आवाज आई थी उसी तरफ दक्षिण द्वार पर जा पहुंचा। वहां जाकर देखते हैं कि एक वृद्ध ब्राह्मण हाथ में नाना प्रकार की भोजन सामग्रियों से भरा हुवा एक रत्न जड़ित थाल लिये हुये खड़ा उसकी बाट देख रहा है। ब्राह्मण बन्धु को देखते ही बोल उठा "बन्धु! इतनी देर क्यों लगाई, पुकारते पुकारते मेरा कंठ सूखने लगा। देख! इस भोजन सामग्री के थाल के भार से मेरा हाथ थर थर कांप रहा है, इसको शीघ्र ले ले और आज भर इसे पाकर काम चलावो कल दूसरा इंतजाम हो जायगा"।

बंधु ने ब्राह्मण की मुख ज्योति से स्तम्भित हो थाल हाथ में ले लिया और मुंह से एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सका। ब्राह्मण देवता थाल देकर चट भीतर चले गये। बंधुने अपनी स्त्री बालकों के पास आकर सारा हाल कह सुनाया और बालकों

को भोजन करा स्त्री सहित स्वयं भी तृप्त हो, पानी पी, थाल मांज धोकर लौटाने के लिये दक्षिण द्वार पर फिर आया। द्वार को बंद देख जोर से पुकारने लगा लेकिन कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। अन्त में थक कर अपने स्थान पर आ बैठा। थाल को बारम्बार देखकर आनन्द के मारे फूला नहीं समाया। इसलिये नहीं कि रत्न जड़ित थाल मिल गया, लेकिन इसलिये कि 'यह रत्नथाल तो मेरे प्रभु के हाथ में से आया है। यह कोई सामान्य थाल नहीं है। इस तरह विचार करते करते कभी थाल को छाती से लगाते हैं कभी सिर पर रखते हैं। उनको अपूर्व आनन्द होरहा है मानो साक्षात् प्रभु का ही स्पर्श हो रहा है। इस तरह आनन्द रूपी मदिरा के नशे में उनको बाहर का होश भी नहीं रहा और बेसुध हो गिर गये। रत्नथाल को माथे के नीचे रख सोगये मानो प्रभु के पद्मों में मस्तक रख रक्खा है। ऐसा अनुभव होने लगा। उनके आनन्द की सीमा नहीं है। मन प्राण और समस्त शरीर एक अपूर्व अप्राकृत आनन्द से भेट हुये हैं।

प्रातःकाल नियमानुसार सभी सेवक स्नान कर शुद्ध हो अपने अपने कार्य पर आगये। भंडारी भंडार का ताला खोल भीतर गये तो अनेक वस्तुयें जैसे रख गये थे उसके प्रतिकूल बिखरी हुई मिली। भंडारी के मन में सन्देह उठने लगा और देखने से मालुम हुवा कि रत्नथाल गायब है, घबराता हुवा बाहर आया और सब सेवकों से इसका हाल निवेदन किया। कहने लगे कि बाहर से कौन आवे था यह तो किसी सेवक का ही काम है। सभी सेवक अपने को निर्दोष बताने लगे। अन्त में सोदार पंडा नामक रसोइया जो गत रात्रि को वहां रह कर रंधन करता था उसी पर सब कलंक का टीका मढा गया और सब उस बिचारे निर्दोषी रसोइया पर मार की वर्षा करने लगे। खबर हाथों हाथ सारे नगर में फैल गई।

दैवेच्छा से जिस थाल के लिये इतनी गोल-माल मच रही थी वही थाल माथे नीचे रख कर बन्धु अलौकिक आनन्द में मग्न हो सो रहे थे, उन्हें इस गड़बड़ की जरा भी खबर नहीं है, वे बिचारे अभी तक रत्नथाल को लिये उसी प्रकार सो रहे हैं। सूर्योदय होने से सूर्य की किरणों से रत्नों में से प्रकाश निकलने लगा। और दैवयोग से किसी राह चलने वाले की उस पर नज़र पड़ गई। उसने दौड़ कर मंदिर में जाकर सबको वहां बुला कर थाल के चोर को दिखा दिया। अब तो सब मिल कर उस आनन्द में सोये हुये बन्धु को 'चोर चोर' कहते हुये गरदन पकड़ कर उठा लिया। बिचारा बंधु भी अचानक इतनी भीड़ को देख घबरा गया और उनसे यह भी नहीं पूछ सका कि उनने उसको किस लिये पकड़ा है। रत्नथाल छीन लिया गया। हाथ पैर बांध दिये गये। मंदिर में आने जाने वाले सभी तिरस्कार करने लगे। चारों ओर से गालियों की बर्षात होने लगी। बंधु की ऐसी अवस्था देख कर उसके स्त्री पुत्र विलाप करने लगे। लेकिन बंधु इतना मार और गालियें पड़ने पर भी जरा भी नहीं विचलित हुये और धैर्य पूर्वक गोविन्द का स्मरण करते रहे बंधु का क्षण भंगुर शरीर का मोह सुख दुःख और मानापमान की स्पृहा नष्ट हो गई थी। पीटने और गाली देने वालों की भी वे मंगल कामना ही करते थे। मन ही मन में प्रभु की लीला समझ आनन्दित हो रहे थे। बंधु की स्त्री रात की सब हकीकत उस भीड़ से वर्णन करने

लगी परन्तु किसी ने एक शब्द भी नहीं सुना। स्त्री बच्चों के रुदन पर भी उनको दया नहीं आई। धक्के देते हुये उसे कारागृह में ले गये। सब भीड़ भी इधर उधर होगई। केवल कुछ वृद्ध पुरुष बंधु के परिवार को सान्त्वना देकर समझाने लगे और उनके भोजनादि का प्रबन्ध भी कर दिया।

बंधु को कारागृह में बेड़ियां पहना कर एक अंधेरी कोठरी में छोड़दिया लेकिन इससे उसको जरा भी दुःख नहीं हुवा और न उसने भगवान् को ही कुछ बुरा भला कहा। यदि हम लोग बंधु की जगह होते तो न मालूम सबके सुहृद उस करुणा-सिन्धु भगवान् को क्या क्या कह डालते। लेकिन बन्धु का यही विश्वास था कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'। इससे भी वह भगवान् की अपार करुणा मानते थे। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि यह मेरे कोई पूर्व कृत पाप का फल है जो भगवान् दया कर इस प्रकार के साधारण दंड से भुगतवा रहे हैं।

बंधु! धन्य है तुम्हारी धारणा और श्रद्धा को। हमारे आज कल के विद्याभिमानी भाई तो तुम्हारी श्रद्धा को अंधी ही बतावेंगे। "जो भगवान् तुमको स्वयं रत्न थाल देगये और फिर चोरी सिर लगवा कर कारागृह की हवा खिलाई उन पर उन्हीं के कारण इतना कष्ट भोगने पर भी वैसी धारणा और श्रद्धा नहीं तो और क्या है"। ठीक है। उनके लिये अंधी होगी लेकिन हमारे बंधु के लिये तो यह श्रद्धा हजारों सूर्य से भी अधिक प्रकाश वाली थी। जिस विद्या की वहां गति ही नहीं है उस विद्या के विद्वान् विचारे इस रहस्य को क्या समझेंगे। जिसने एक बार उसे समझ लिया वही धन्य और कृतकृत्य होगया। अस्तु,

इधर बन्धु कारागृह में भगवान् का पूर्ववत् स्मरण व ध्यान कर रहे हैं। रात्रि होगई। सेवकगण अपने अपने काम को पूरा कर ताला बंद कर और मोहर लगा अपने अपने घर चले गये। पुजारी भी भगवान् को नित्य की भांति शयन करा अपने घर गये। लेकिन भगवान् को कहां नींद पड़ती थी। वे गरुड़ पर सवार हो सीधे राजा प्रतापरुद्र के महल में पहुंचे और अन्तःपुर में छत्र पलंग पर शयन किये हुये राजा को स्वप्न द्वारा सब घटना बतला कर आदेश दिया कि बंधु को शीघ्र बंधन मुक्त करके, तीर्थ जल में स्नान करा सुन्दर वस्त्राभूषण पहरा कर, मंदिर का कोषाध्यक्ष नियुक्त कर।

भगवान् के आदेशानुसार राजा तुरन्त उठ कर घोड़े पर सवार हो पुरी पहुंचे और सब बात पूछ ताछ कर सीधे कारागृह में जा बन्धु को बंधन मुक्त कर आदर सहित स्नान करा सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर अपने नौकरों के अपराध को बारम्बार विनय पूर्वक क्षमा करा कर उन्हें कोषाध्यक्ष नियुक्त किया और वंश परंपरा के इस अधिकार की सनद लिख कर उनके अर्पण करा। दूसरे दिन सारे नगर में यह वृत्तान्त फैल गया। पहिले दिन जिन लोगों ने बंधु को चोर बना कर मारा था व गालियें दी थीं वे सब आकर उनके चरणों में गिर क्षमा याचना करने लगे। बन्धु भगवान् के चरण-कमलों का ध्यान करते हुये, लज्जा और संकोच पूर्वक उन्हें निवारण करने लगे।

धन्य है बंधु! तुम्हारा नाम। स्वयं दीनबंधु भगवान् जिसे बन्धु कह कर पुकारे उसके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है। जगत में अनेक बंधु

देख पड़ते हैं परन्तु यथार्थ बंधु को तो आपने ही पहचाना है। कितनी सहन शीलता और दृढता रखने से उनके साथ बंधुभाव हो सकता है यह आपके दृष्टान्त से अच्छा प्रकार मालुम हो जाता है। हम लोग भी आपको प्रणाम कर यही मांगते हैं कि हमें भी ऐसा आशीर्वाद दीजिये जिससे हम भी जगत बन्धु से अपना बन्धुभाव करने में समर्थ हों और नाम स्मरण करते हुये, सर्वस्व उसके चरणों में समर्पण कर उसका आश्रय पाने के लिये भाग्यशाली हों।

जगत्बंधु जिसके बन्धु हों उसे फिर किस बात का अभाव हो सकता है? बंधु महान्ति श्री-परमकृपालु जगदीश्वर के अचल पद को प्राप्त हो अपने परिवार सहित कीर्तन के परम सुख से दिवस बिताने लगे।

(गुजराती से)

---

# भगवद्भक्ति

## वेषवर्णन निष्ठा।

[ले० श्री० पूज्य भोले बाबा जी]

सर्वपूज्यं सदापूर्णं निर्मलं परमामृतम्।
अनन्तं जगदाधारं वन्देऽहं परमेश्वरम्॥

सं सारांम-महाराज! कल आपने गुरु निष्ठा और गुरु निष्ठा संबंधी भक्तों की कथायें सुनाई थीं, आज कृपा करके वेष के संबंध में वर्णन कीजिये और वेष संबन्धी भक्तों की कथायें भी सुनाइये! आपके वचनामृत सुनने से तृप्ति नहीं होती ज्यों २ सुनता हूं, उत्साह बढता जाता है और अधिक श्रवण करने को जी चाहता है।

सारांम-भाई! भगवत् और भगवद्भक्तों की कथा सुनने से जो उपराम को प्राप्त हो जाय, वह भगवत् चरित्रों का रस जानता ही नहीं है, भला! भक्तों के चरित्र सुनने को किसको उत्साह नहीं होता? सबको होता है! जिन मूढ पुरुषों की भगवान में प्रीति नहीं है किंतु विषय भोगों में ही जो रति मानते हैं, वे भले ही भक्तों के चरित्रों में प्रीति न करें, भगवद्भक्त तो भक्त चरित्रों को समाधि त्याग कर भी सुनते हैं।

देख, भगवत् की प्राप्ति के अर्थ दो प्रकार के वेष हैं, एक आन्तरीय और दूसरा बाह्य।

आंतरीय वेष-(१) अन्तर का विचार यानी सार असार का समझना, (२) वैराग्य यानी ब्रह्मलोक पर्यन्त के सुख का त्याग (३) शम यानी मन का निग्रह (४) दम यानी यम नियम के अवलम्बन से इन्द्रियों को अपने वशमें रखना, (५) उपरति यानी मन को फिर उन स्वादों की ओर न जाने देना (६) तितिक्षा यानी सुख दुःख, शीतोष्णता सहन करना, (७) श्रद्धा यानी गुरु शास्त्र में विश्वास और भगवत् में आस्था, (८) समाधान यानी भगवत् के ध्यान की समाधि।

बाह्य वेष-(२) जो देखने में आवे उसको बाह्य वेष कहते हैं। बाह्य वेष पांच प्रकार का है।

(१) ऊर्ध्व पुण्ड्र अर्थात् तिलक (२) मुद्रा यानी शंख चक्र भगवद्भक्तों के चिन्ह शरीर पर

लगाका, (३) माला (४) मंत्र (५) नाम। कोई नाम के स्थान पर विचार कहते हैं। ये पांचों संस्कार गृहस्थ और त्यागी दोनों को ही उचित हैं क्योंकि पद्म पुराणादि स्मृतियों में ऐसाही विधान है और वेद की भी आज्ञा है। भेद इतना है कि जो गृहस्थ होते हैं, उनका नाम वह ही रहता है, जो घर में रक्खा गया है और विरक्तों का वह नाम विख्यात होता है, जो संस्कार के समय गुरु कृपा करके देते हैं।

हे मंसाराम! वेष का माहात्म्य और बड़ाई क्या बताऊं, बात यह है कि भगवत् की प्राप्ति के लिये वेष ही मुख्य उपाय है और भगवद्भक्ति का यह ही एक अवलम्बन है। पद्म पुराण में कहा है कि जिनके गले में तुलसी की माला पड़ी हुई है, जो कमल के फूलों की माला धारण किये हुये हैं, भगवच्छस्त्रों का चिन्ह जिनकी भुजाओं पर है। जिनके मस्तक पर तिलक हैं, ऐसे वैष्णव शीघ्र ही संसार को पवित्र कर देते हैं। आगम सारतंत्र का वचन है कि जो केवल मालाधारी वैष्णव है, वह ब्रह्मा आदि देवताओं से भी पूजने योग्य है, मनुष्य की तो बात ही क्या है। मंत्र शास्त्र का वचन है कि जिसके गले में माला है, जिसके माथे पर तिलक है और जिसके बदन पर भगवच्छस्त्रों का चिन्ह है, वह चांडाल हो तो भी पूजनीय है। महाभारत के भीष्मपर्व में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र जिसने वैष्णव वेष धारण किया है, वह पूज्य है, दंडवत् करने योग्य है और वही कर्मों में युक्त है। यदि शूद्र भी होता है तो भी ऐसा है कि ब्राह्मणों की धरती पर मिलना कठिन है। पद्मोत्तर खंडमें कहा है कि हे नारद! वर्णाश्रमों के काम्य, नित्य, नैमित्तिक जितने कर्म हैं, वे स्नान करने के बाद तिलक किये बिना सिद्ध नहीं होते ऐसे सैकड़ों, हजारों श्लोक हैं और क्यों न हों? होने ही चाहिये क्योंकि वेष बिना कोई मार्ग इच्छा के निमित्त देखने नहीं आता। वैष्णव, शैव, स्मार्त, शाक्त आदि जितने संप्रदाय हैं, सब में इन संस्कारों की प्रथा है। ब्रह्मा से आदि लेकर जितने ऋषीश्वर और भक्त हुये हैं, सबको पहिले संस्कार और गुरु मंत्र का उपदेश हुआ है। बिना मंत्रादि न आज तक किसी का उद्धार हुआ, न होगा, शास्त्र की आज्ञा प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण बालक का संस्कार आठ वर्ष की अवस्था में, क्षत्रिय का ग्यारह वर्ष की अवस्था में, और वैश्य का सोलह वर्ष की अवस्था में न हो जाय, तो वह अपने वर्ण से पतित हो जाता है। संस्कारों का होना सब प्रकार से सिद्धांत और मुख्य कर्तव्य है।

मंसाराम-महाराज! ऊपर के वेष बनाने से क्या लाभ है? मन वेष संवारना ही मुख्य है!

मस्तराम-भाई! प्रथम तो यह प्रश्न करना ही युक्त नहीं है क्योंकि शास्त्र की आज्ञा में वाद करने का साहस ही करना न चाहिये किंतु कान दबा कर शास्त्राज्ञा का पालन करना उचित है। विचार कर देखा जाय तो क्या जन्म के दिन से ही संसार में ऊपर के वेष तथा भजन बिना अन्तःकरण शुद्ध हुआ है? नहीं हुआ! जब सैकड़ों जन्मों तक ऊपर के भजन व्रत, नियम, यम, जप, तप आदि किये जाते हैं तब अंतःकरण शुद्ध होता है सिवाय इसके प्रसिद्ध है कि पारस पाषाण लोहे को सुवर्ण कर देता है। यह वेष भी पारस पत्थर के समान है कि निस्सन्देह अंतःकरण के अवगुणों को दूर कर देता है। सिवाय इसके तुलसी और भगवत् के चिन्हों का सत्संग है। सत्संग का माहात्म्य तू

सुन ही चुका है। सत्संग तीर्थके समान है। जैसे तीर्थों का स्वभाव पवित्र करना है इसी प्रकार बाह्य वेष भी पवित्र करने वाला है। जब तलवार बांधता है, तभी सिपाही कहलाता है। ठाकुर द्वारे और शिवालय की ध्वजा बिना पहिचान नहीं होती। बैल के ऊपर त्रिशूल का अंक कर देने से वह शिव का नादिया विख्यात हो जाता है।

## कालू कहार की कथा।

कालू कहार कहारों का गुरु हो चुका है। उसका वृत्तान्त यह है कि वह किसी धर्मात्मा राजा के राज्य में मछलियां पकड़ा करता था। एक दिन उसने राजा को आते हुये देखा। घबरा कर सोचने लगा कि आज खैर नहीं, यदि राजा ने जाल देख लिया, तो अवश्य मुझे जेलखाने भेज देगा! ऐसा विचार कर भययुक्त होकर उसने जाल तो तालाब में छोड़ दिया, मिट्टी का तिलक माथे पर लगा लिया, और जाल के दानों की माला लेकर साधु का रूप बना कर बैठ गया। राजा ने इसको साधु जान कर दंडवत् प्रणाम किया और कुछ भेंट आगे धर कर चला गया। कालू उसी घड़ी भगवत् शरण हुआ मछलियां न पकड़ने की प्रतिज्ञा की और यह दोहा पढने लगा।

दो०—बाना बड़ा दयाल का, तिलक छाप अरुमाल।
यम डरपे कालू कहे, भय माने भूपाल॥

हे मंसाराम! इसलिये उचित है कि सद्गुरु से वेष अवश्य ग्रहण करे! पांचों संस्कारों का वर्णन इस प्रकार है।

(१) तिलक-अथर्वण वेदमें कहा है कि भगवत् चरण के चिन्ह यानी तिलक जीवके कल्याण का हेतु है, जो कोई धारण करता है, वह कल्याण का भागी होता है। जो तिलक खड़ा हो और जिसके मध्य में छिद्र हो, वह तिलक भगवान को प्यारा है, उसका लगाने वाला धर्मात्मा और मुक्त है। पुराणों में तो बहुत प्रमाण मिलते हैं। चारों संप्रदायों में तिलक की कथा है किंतु तिलकों के स्वरूप में भेद है। श्रीसंप्रदाय में ललाट में दोनों ओर भगवत् चरणों के चिन्ह बनाकर दोनों भौहोंके बीच सिंहासन लगाते हैं और तिलक के बीच में रोली यानी लाल लकीर ज्योति के आकार की खींचते हैं, इसका नाम श्री है। श्री अधिक करने के दो कारण हैं, प्रथम तो यह भगवत् चरणों का चिन्ह है। इन चरण कमलों का श्री यानी लक्ष्मी अनुक्षण सेवन करती हैं। माध्व संप्रदाय में दो महीन लकीरें ऊंची लगा कर दोनों भौहों के नीचे सिंहासन लगाते हैं और सिंहासन के नीचे कटार के फल के आकार का एक चिन्ह नाक तक कर देते हैं, निम्बार्क संप्रदाय में दो महीन लकीरों के बीच में एक छोटी श्याम अथवा श्वेत बिन्दी लगाते हैं, उसको कमल कहते हैं, और सिंहासन तिलक के समान महीन लकीर का होता है। विष्णु स्वामी संप्रदाय के दो महीन लकीरों के नीचे सिंहासन लगा कर बीच में शून्य छोड़ देते हैं। व्यास जी की नयी परिपाटी है। उनके और निम्बार्क संप्रदाय के तिलक में थोड़ा भेद है। निम्बार्क संप्रदाय में दोनों भौहों के बीच में सिंहासन लगाया जाता है, और व्यास जी के संप्रदाय में नासिका के अग्रभाग में सिंहासन होता है, हित हरिवंश जी की संप्रदाय का तिलक निम्बार्क संप्रदाय के आकार का है और रामानंद जी की संप्रदाय का तिलक श्री संप्रदाय के अनुसार है। चारों संप्रदायों में बारह अंगों पर

तिलक लगाने को लिखा है, सब तिलकों के मन्त्र अलग २ हैं! समुद्र कर भाष्य में लिखा है कि गंगामृत, तुलसी मूल मृत्तिका, मलयागिर चंदन, साधु चरण रज, गोपद मृत्तिका, अश्वत्थ मूल मृत्तिका, गोपी चंदन तीर्थ मृत्तिका कुंकुम, तुलसी-काष्ठ, वैष्णव को लाई हुई मृत्तिका गोरोचन, कस्तूरी हरिद्रागुरु चंदन, गंध काष्ठ, महानिम्ब, यमुनातीर मृत्तिका, इन में से किसी का तिलक लगाना चाहिये। गुरुपाद रजके जलमें अथवा साधु चरण रजके जलमें प्रतिदिन स्नान करके जो पुरुष सुन्दर तिलक लगाता है, वह वैष्णव है। जिनके कंठ में तुलसी की माला है, जो द्वादश अंगों पर तिलक लगाते हैं जो अंगों पर शंख चक्र धारण करते हैं और जो कृष्ण की भक्ति में दृढ हैं, वे वैष्णव शीघ्र ही भुवनों को पवित्र करते हैं। मृत्तिका का ऊर्ध्व पुण्ड्र लगावे, त्रिपुण्ड्र भस्म लगावे और द्विज चन्दन का तिलक लगावे।

(२) मुद्रा-अथर्वण वेद की आज्ञा है कि जो पुरुष भगवत् के शंख चक्र आयुधों की तप्त मुद्रा दोनों भुजाओं पर धारण करता है, वह विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त होता है। पद्म पुराण में भी ऐसी ही आज्ञा है। यद्यपि चारों संप्रदाय वाले इस आज्ञा को अंगीकार करते हैं परन्तु श्री-संप्रदाय में तो दीक्षा के समय ही तप्त मुद्रा धारण करा देते हैं, और तीन संप्रदायों में पुराण के एक श्लोक के प्रमाण से शीतल मुद्रा की रीति है। यद्यपि पूर्व के आचार्यों ने पुराण के प्रमाण से तप्त मुद्रा धारण करने का एक स्थान द्वारिका ही लिखा है परतु गृहस्थों में यह चलन नहीं है, विरक्तों में ही है।

(३) माला- तुलसी अथवा कमल के कल की माला विहित है। तुलसी का माहात्म्य पुराणों में विस्तार से लिखा है। सारांश यह है कि तुलसी धारण करने वाले को निश्चय भगवत् की प्राप्ति होती है। और मरण समय तुलसी की माला अथवा तुलसी दल अथवा कंठी जिसके शरीर पर होती है, उसको यमराज का भय नहीं होता किंतु सद्गति को प्राप्त होता है। पद्म पुराण में कदम्ब आदि वृक्षों के काष्ठ की माला और वृन्दावन की बनी हुई माला का माहात्म्य तुलसी माला के सदृश देखने में आता है।

(४) मंत्र-मंत्र का जितना माहात्म्य लिखा जाय, इतना थोड़ा है क्योंकि भगवत् और मंत्र में किंचित् भी भेद नहीं है। जिस प्रकार अंधेरे घर में रक्खा हुआ घट दीपक से दिखाई देता है। इसी प्रकार महामाया से ढका हुआ आत्मा मंत्र से देखने में आता है। मंत्र के वाच्य और लक्ष्य दो प्रकार के अर्थ होते हैं। वचन मात्र से पदार्थ का बोध कराने वाले अर्थ को वाच्य कहते हैं और लक्षण से पदार्थ के जताने वाले अर्थ को लक्ष्य कहते हैं, जैसे विष्णु शब्द का वाच्य अर्थ शंख चक्र गदा पद्म पीताम्बरधारी पुरुष मूर्ति है, और लक्ष्य अर्थ सर्वव्यापी, सर्वाधार सर्वान्तर्वर्ती परमात्मा है। शब्दमय मंत्र स्थूल विग्रह वाला बाह्य कहलाता है। सूक्ष्म ज्योतिर्मय, हृदयगत, चिन्तामय मंत्र श्रेष्ठतर माना गया है और चिंतवन रहित मंत्र श्रेष्ठतम माना गया है। इस प्रकार महामंत्र का ध्यान करने से परम गति प्राप्त होती है। मंत्र राज के प्रसाद से मनुष्य प्रमाद रहित हो जाता है, चैतन्य सहित मंत्र सर्व सिद्धियों का देने वाला है। जिस प्रकार शक्कर में मधुरता है, जैसे ज्योति से सूर्य में सर्व ब्रह्मांड है, इसी प्रकार मंत्र में पूर्ण ब्रह्म विराजमान है। जैसे योग्य साधन के संयोग से बीज

में से वृक्ष निकल आता है, इसी प्रकार योग्य साधन के संयोग से मंत्र में से परब्रह्म प्रकट होता है प्राणियों के मध्य में मनुष्य ही केवल मंत्र को जप सका है, इसलिये मोक्ष कामी को सर्वदा मंत्र का मनन करना चाहिये। 'या तो मंत्र को सिद्ध करूंगा। अथवा देह का त्याग कर दूंगा' इस प्रकार के भाव से मंत्र का सदा जप करना चाहिये। अभ्यास के योग से मंत्र स्वाभाविक हो जाता है, और योगी के चित्त में स्वप्न में भी मंत्र की धारा बहती है। रक्त में और प्राणवायु में मंत्र निश्चय नृत्य करता है और देह में स्थित सब परमाणु मंत्रमय हो जाते हैं। सागर गामिनी नदी मंत्र का गान करने लगती है, कल हंस मधुर ध्वनि से मंत्र कीर्तन करते हैं, आकाशचारी पक्षी महा मंत्र का गूंज करते हैं और जगत् का प्राण रूप वाद मंत्र घोष करता है, विश्वमाता प्रकृति मंत्र का उच्चारण करती है, मंत्र जगन्मय हो जाता है और जगत् मंत्र मय हो जाता है इस प्रकार मंत्र के प्रभाव से भक्त भगवत्मय होकर सर्वमय होजाता है। इस प्रकार मंत्रके प्रभावसे शीघ्र ही भगवत् की प्राप्ति होती है। चारों संप्रदायों के मंत्र अलग २ हैं।

मंसाराम महाराज! जब भगवत् एक है तो उनके मंत्र अलग २ क्यों हैं?

मस्तराम-भाई! जिस प्रकार एक मनुष्य को कोई अपरोक्ष नाम से पुकारता है, और काई चाचा, ताऊ आदि परोक्ष नाम से पुकारता है। जिस प्रकार एक मनुष्य चाहे जिस नाम से पुकारे जाने पर सावधान और समुख हो जाता है, इसी प्रकार भगवत् भी चाहे जिस नाम मंत्र से स्मरण किये जांय, संमुख हो जाते हैं।

(५) नाम-नाम के निमित्त किसी प्रमाण का प्रयोजन नहीं है। जो जिस वर्ग में होता है वैसा ही उसका नाम रक्खा जाता है। जैसे पलटन में भरती होने वाला सिपाही कहलाता है और सवारों में भरती होने वाला सवार कहा जाता है, इसी प्रकार जिस संप्रदाय में शिष्य होता है, उसी के अनुसार उसका नाम रक्खा जाता है।

चारों संप्रदायों के संन्यासी त्रिदंड धारण करते हैं और त्रिदंडी कहलाते हैं। एक दंड पलाश की लकड़ी का, दूसरा शिखा और तीसरा सूत्र यानी यज्ञोपवीत ये तीन दंड हैं। विशेष करके इनके नाम गिरी, पुरी, तीर्थ, मुनि संन्यास धारण के समय रक्खे जाते हैं। श्वेत, गेरुवे अथवा शिंगरफी रंग के वस्त्र पहिनते हैं और संन्यास के पहिले नीलादि शास्त्र निषिद्ध वस्त्रों के सिवाय सब रंग के वस्त्र पहिनते हैं। स्मार्त संप्रदाय चारों संप्रदायों से भिन्न है। इसके आचार्य श्रीशंकर स्वामी हुये हैं। इस संप्रदाय के तिलक त्रिपुण्ड्र, नटाकार चन्दन, भस्म, गोपीचन्दन अथवा तीर्थ मृत्तिका होते हैं। तुलसी, कमलाक्ष, रुद्राक्ष जयापूतादि की माला होती है। गायत्री आदि मंत्र हैं। मुद्रा की प्रथा नहीं है, त्याज्य मानते हैं। नाम जन्म के समय का ही रहता है। यज्ञोपवीत के समय के संस्कार ही पर्याप्त समझते हैं, फिर गुरु नहीं करते। इस संप्रदाय में संन्यास की यह रीति है कि शिखा सूत्र दूर कर देते हैं, केवल लकड़ी का एक दंड रखते हैं, नाम भी उसी समय दूसरा रक्खा जाता है। इस संप्रदाय में संन्यासियों के दश नाम हैं। इन दशों नामों की संज्ञा श्रीशंकर स्वामी की कथा में बताऊंगा। गेरू या शिंगरफ के रंग का कपड़ा पहिनना भस्म का तिलक त्रिपुंड्र

लगाना, ब्राह्मण के सिवाय अन्य किसी के हाथ का भोजन न करना, कर्मों का करना न करना समान समझना ये मुख्य धर्म हैं और अन्य धर्म सब संन्यासियों के समान हैं। मुख्य संन्यासी वे हैं, जो दंड धारण किये रहते हैं और सब संप्रदायों में दंडी स्वामी कहलाते हैं। विशेष करके काशी और मथुरा आदि में मिलते हैं।

हे संसाराम! एक भक्त इस प्रकार प्रार्थना करता है।

हे श्रीकृष्ण स्वामी! अंतर्यामी! हे दीन बत्सल! हे दीन दयालु! हे करुणाकर! क्या कभी कृपा करके इस घर जाये चेरे की ओर भी दृष्टि कीजियेगा? हे नाथ! भला हूं अथवा बुरा हूं, जैसा हूं, आपका हूं, अन्य का नहीं हूं! जिस प्रकार लाखों करोड़ों जन्म से इस मेरे मन ने मुझे अपने वश में कर रक्खा है, इसी प्रकार क्या मुझे भी कभी ऐसा सामर्थ्य प्रदान कीजियेगा कि मैं अपने मन को अपने आधीन रख सकूं और अपनी आज्ञा में चलाऊं! मैं तो अनेक अपराधों से भरा हूं, इसलिये आपके देखने योग्य दर्शन करने योग्य नहीं हूं, परन्तु आप अपने विरद की ओर देखिये! आपका विरद है कि कोटान कोटि महापापी और महापातकी एक आपके नाम के अवलम्बन से शुद्ध और पवित्र होगये हैं, होते रहते हैं और आगे होंगे! मेरी प्रार्थना पूर्णकरना दुर्घट नहीं है किंतु आपकी कृपा दृष्टि की देर है! जहां आपकी कृपा दृष्टि हुई कि बेड़ा पार है। हे प्रभो! इतना ही मांगता हूं कि चाहे नरक में होऊं, चाहे स्वर्ग में होऊं, कहीं भी होऊं।

---

# गोपाल

## मन हरण घनाक्षरी

[ ले० श्री 'साहित्य-भूषण' शम्भूदयाल "नेह" ]

भक्ति ग्वाल-बालों की, पवित्र-प्रीति गोपियों की।
मीठी-छाछ ब्रजकी, गुपाल! क्या भुलाओगे॥
व्याकुल तुम्हारे बिन रहते हैं ब्रज-बासी।
सुखरासी! क्या न अब सुख-सरसाओगे॥
घूमि घूमि धेनु क्या चराओगे न कुन्जन में।
झूमि झूमि क्या न मृदु बाँसुरी बजाओगे।
आओगे न करुणा-निधान! क्या? "सुकवि नेह"
योंहीं दरशन बिन हाय! तरसाओगे।

२

बन्सीवट- पनिघट- यमुना के तट पर॥
सांवले! छबीली-छटा क्या न? छिटकाओगे।
जंगल में मंगल के साज क्या सजाओगे न॥
लीलाधाम! लीला क्या न? विश्व को दिखाओगे।
प्यारे-सखा-साथियों की टेर क्या सुनोगे नहीं॥
लाज नारियों की क्या न? आन के बचाओगे।
"कवि नेह" क्या न? दीन-हीनों के हरोगे दुःख॥
दीनबन्धु! ऐसे क्या कठोर बन जाओगे।

---

# वैराग्य और अभ्यास

[ डॉ० बा० राधेश्याम बी० ए०, एल० एल० बी० ]

संध्या का समय है श्री परम पावनी गंगा जी का तट है, सूर्य भगवान् अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे हैं गंगा जल के प्रवाह में दीपक बहते हुए जा रहे हैं, और दर्शकों में भक्ति रूपी प्रकाश उत्पन्न कर तिमिर रूपी अज्ञान नष्ट कर रहे हैं। भक्तगण संध्या में तल्लीन हैं. शीतल मन्द वायु दिन भर के परिश्रमोपरान्त क्लान्त चित्त को शान्ति प्रदान कर रही है। कृषकगण अपने कन्धों पर हल और हाथ में बैलों को डोर लिये हुए ऐसे जा रहे हैं जैसे पूर्ण अभ्यासी धैर्य्य धारण कर अपनी इन्द्रियों को वश में किये हुए प्रतीत होता है। निकट वर्तीय पुष्पवाटिका में गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए संन्यासी महाराज श्रोताओं को अमृतमई गीता सुना रहे हैं उन्होंने निम्न लिखित श्लोक पढ़ा:-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

पाठकगण इसी श्लोक के दो शब्दों वैराग्य व अभ्यास को लेकर यह लेख लिखा जाता है। गीता एक अपूर्व निधियों की खान है। एक एक श्लोक का एक एक शब्द रत्न के समान है जिसको समझ कर अज्ञानी रूपी रंक ज्ञानी रूपी राजा हो जाता है और विशेषता यह है कि फिर यह राजा रंक नहीं होता। उक्त श्लोक श्रीभगवान् ने निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर में कहा था।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

अर्जुन के ये प्रश्न थे यह जो आपने निष्काम कर्म योग का वर्णन किया इसमें सफलता होना मन की चंचलता से असंभव मालूम होती है। हे कृष्ण मन तो बड़ा चञ्चल है इन्द्रियों को विक्षेप करने वाला है और बहुत बलवान् है तात्पर्य्य यह है कि मन विवेकी जनों के वश में नहीं रहता है इन्द्रियां मनुष्य की ऐसी बलवान् होती हैं कि मनुष्य इच्छा न करते हुए भी विषयों में प्रवृत्त होता है। मैं तो यह समझता हूं कि इसका वश में करना वायु के वेग के समान अत्यन्त कठिन है।

सारांश यह है कि मन कैसे वश में हो सकता है? इसी प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि मन निस्सन्देह चञ्चल है परन्तु वैराग्य व अभ्यास से वश में हो सकता है। वैराग्य और अभ्यास द्वारा इसको वश करने में कोई कठिनाई नहीं।

पाठकगण! अर्जुन का ही यह प्रश्न नहीं था किन्तु पूर्वम भी अनेक मुनियों ने यह प्रश्न किये हैं जो शास्त्रों में वर्णित हैं कितने ही यती मुनियों को इस मनकी चञ्चलता से अनेकों कष्ट उठाने पड़े। अनेकों की तपस्यायें भंग हुईं। यहां तक कि ब्रह्मा शिव नारदादि को इस मन की चञ्चलता से अनेकों नाच नाचने पड़े। अब भी प्रायः लोग कहते हैं कि मन बड़ा चंचल है। मन ही माया है अथवा माया

मन ही में समाती है। यह जीव रूपी बन्दर मन रूपी बाजीगर के वश में होकर नाना प्रकार के नाच नाचता है। मन बड़ा ठग है, मन गयन्द है और महा बलवान् है कबीरदास जी के निम्न लिखित पदों से मन की चंचलता स्पष्ट है।

मन माया तो एक है माया मनहिं समाय।
तीन लोक संशय परा काहि कहूं समुझाय॥
पानी हूं ते पातला धूंआ हूं ते झीन।
पवनहुं ते अति उतला दोस्त कबीरा कीन॥
बाजीगर का बान्दरा ऐसा जिउ मन साथ।
नाना नाच नचाय के राखे अपने हाथ॥
मन करि सुर मुनि जेहि दया मन के लक्ष दुवार।
ते मन चंचल चोरई ई मन शुद्ध ठगार॥

अब भी मन की चंचलता से ऊब कर संन्यासियों के पास जाकर प्रायः लोग पूछते हैं। महाराज! मन कैसे वश में हो सकता है? यह तो बड़ा बलवान् है। श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि मन अभ्यास व वैराग्य से वश में होता है। इस मत्त गयन्द को वैराग्य और अभ्यास रूपी अंकुश से वश में लासकते हैं। वैराग्य व अभ्यास ही दो साधन है जिनसे मन वश में आता है। वैराग्य व अभ्यास रूपी जंजीर इस उन्मत्त मनको बांध सकती हैं।

कितने ही शास्त्र पढ़िये धुरन्धर विद्वान् हो जाइए परन्तु यदि अभ्यास व वैराग्य नहीं तो मनुष्य और काक में कोई भेद नहीं। कितने ही चतुर क्यों न हों बिना वैराग्य के सब वृथा है। क्योंकि मनुष्य की इन्द्रियां इतनी प्रबल होती हैं कि विद्वान् के मन को भी बलात्कार अपनी ओर खींच लेती हैं।

यततोऽपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

यत्न करने पर भी इन्द्रियें मुख्यतः मन जो उनका राजा है मनुष्य को कुएं में डालने की शक्ति रखता है जैमिनि ऋषि का वृत्तान्त जगत् प्रसिद्ध है। कबीर दास ने इन्द्रियों की प्रबलता को भली भांति निम्न लिखित दोहे में दिखाया है इन्द्रियां जीव के महान् प्रबल शत्रु हैं ये मनुष्य को कहीं आकाश में कहीं पताल में घुमाती हैं।

कबिरा वैरी सबल हैं एक जीव रिपु पांच।
अपने २ स्वाद को बहुत नचावें नाच॥
तन बोहित मन काग है लख जोजन उड़जाय।
कबहीं दरिया अगम बहि कबहीं गगन समाय॥

जब जैमिनि नारद जैसे ज्ञानियों को इन्द्रियां वश में कर सकती हैं जिन्होंने इनको वश में करने के लिये नाना प्रकार के यत्न किये फिर उन मूर्खों की क्या गिनती जो उनको वश में करने के निमित्त यत्न व अभ्यास नहीं करते। बिना इन्द्रियों के वश हुए योग, जप, तप, कुछ नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण की मूर्ति सामने है हाथ में माला है परन्तु मन बम्बई के सट्टे में है अथवा गंगा तट की स्त्रियों के रूपलावण्य में खिच रहा है अथवा गृह स्त्री पुत्रादि में भ्रमण कर रहा है। ऐसे मनुष्यों के तीर्थ, जप, स्नान व्रत इत्यादि से क्या लाभ? जब मन ही वश में नहीं तो फिर क्या हो सकता है कहा भी है। केवल माला, तीर्थ, स्नान, मन को रोकने में समर्थ नहीं।

भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
निर्मली न मनो यावत् तावत् सर्वं निरर्थकम्॥

मनको वश करने के मुख्य दोही उपाय कहे हैं। इनको छोड़ कर जो अन्य उपाय करते हैं सब गौण हैं। यह वैराग्य और अभ्यास तो होता नहीं

वृथा साधु महात्माओं के आगे माथा पच्ची करते हैं कि महाराज ! कुछ आप बता, ये कि मन को विषयों से कैसे हटावें। लाखों बार वैराग्य और अभ्यास सुनते हैं परन्तु अनुष्ठान क्षण मात्र भी नहीं करते। सुबह प्रातःकाल गंगास्नान करने को कहो तो शीत सताता है। यदि स्त्री पुत्रादि से मन हटाने को कहो तो बुखार चढ़ आता है। साधुओं के पास भी बहुतेरे जाकर संसार में ही लिप्त होने का उपाय पूछते हैं जैसे। महाराज ! कोई ऐसा उपाय बताओ कि अबकी सट्टे में नफ़ा हो अथवा महाराज ! असंख्य उपाय किये पर पुत्र नहीं होता कोई ऐसा यत्न करो कि पुत्र हो। महाराज ! स्त्री बिना घर सूना है "किं गृहं गृहिणी विना" कोई ऐसा जाप बताओ कि जिसके अनुष्ठान से ब्याह हो जावे। अब यह नहीं सोचते कि स्त्री पुत्र धनादि तो कर्मानुसार मिलते हैं साधु महात्माओं तो स्वयं इन सब से हट बैठे हैं। अब साधु होकर इन बातों से क्या प्रयोजन ? वे तो इन से मन हटाने का ही उपदेश देंगे।

उपर्युक्त श्लोक समस्त साधनों का सार है, पातञ्जलि योग दर्शन में चित्त वृत्तियों को रोकने के निमित्त सूत्र कहते हैं।

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः

यह अभ्यास दीर्घ काल तक निरन्तर सेवन करने पर प्राप्त होता है।

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कार सेवितो दृढ़ भूमिः।

यही नहीं कि एक बार कार्तिक की पूर्णिमा पर स्नान कर आए, या मन्दिर में घण्टा हिला आए, फिर एक साल तक कुछ नहीं। यह अभ्यास तो निरन्तर सत्कार यानी ब्रह्मचर्य, तप और श्रद्धा करने से होता है चित्त वृत्तियों को रोकने में यत्न करने को अभ्यास कहते हैं।

तत्र स्थितौ यत्नो अभ्यासः।

विज्ञान वादी अभ्यास के महत्व को भली प्रकार जानते हैं। उनके मतानुसार कोई भी कार्य ऐसा नहीं जो निरन्तर अभ्यास करने से सिद्ध न हो सके। कितना ही मनुष्य कुशाग्र बुद्धि का हो निरन्तर अभ्यास न होने से कुछ नहीं कर सकता है और कितना ही मन्द बुद्धि का हो निरन्तर अभ्यास से सब कुछ कर सकता है गोप देव का दृष्टान्त अभ्यासियों में प्रसिद्ध है। वे कहते थे कि बड़े २ पत्थर के घाट शनैः शनैः घिस जाते हैं। अक्षर अक्षर के पढ़ने से मूर्ख विद्वान् हो जाता है। टिटहरी अपनी चोंचों से समुद्र को सोख लेने को प्रवृत्त हुई और कार्य में सफलता पाई यह दृष्टांत ज्ञात है। सृष्टि में चींटी से छोटा जीवधारी नहीं परन्तु धीरे २ कोसों मील तक चली जाती है यह तो अभ्यास की महिमा है। गरुड़ के समान शीघ्रगामी कोई नहीं होता परन्तु यदि न चले तो एक पग भी नहीं चल सकता। कहा भी है-

गच्छन् पिपीलिको याति योजनानां शतान्यपि।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥

जब निरन्तर अभ्यास करने वाली चींटी का यह हाल है तो मनुष्य अभ्यास से क्या नहीं कर सकता। इस वर्तमान युग में विज्ञान की उन्नति अभ्यास ही के कारण हुई है। रेल, तार, डाक, जहाज, नल इत्यादि आविष्कार मनुष्य अभ्यास द्वारा ही कर सका है। कहां तक कहा जाय मनुष्य में परमेश्वर बनने की शक्ति है। परन्तु यह एक दिन शिवजी को स्नान करा आए इसके पश्चात् तीन दिन तक कुछ

नहीं फिर दो रोज़ स्नान करा आए। अथवा आज सवेरे गए तो कल शाम को परसों दोपहर को, निरन्तर शब्द का अर्थ लगातार एक समय में अभ्यास करने का है। निरन्तर के पश्चात् 'दीर्घकाल शब्द है यानी बहुत समय तक करना चाहिये। प्रायः लोग कहते हैं कि एक बार राम का नाम लेने से युग युगान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं परन्तु यह ठीक नहीं नाम तो शुद्ध भाव से लेने का प्रताप है और जब तक एक बार का भाव है तब तक शुद्ध भाव नहीं हो सकता। गणिका और अजामिल का भाव पूर्व संस्कारों से हुआ था। मरने के समय उनके हृदय में यह भाव नहीं था कि मैं इस समय राम राम कह रहा हूं तो तर जाऊंगा। वह भाव ही और था यह भाव तो दीर्घ काल से निरन्तर अभ्यास से ही हो सकता है। तत्पश्चात् "सत्कार सेवितो" शब्द है अर्थात् निरन्तर न तीर्घकालीन अभ्यास सत्कार पूर्वक सेवित होना चाहिये 'सत्कार' तप, ब्रह्मचर्य विद्या और श्रद्धा को कहते हैं सेवित का अर्थ 'युक्त' है तप, ब्रह्मचर्य विद्या और श्रद्धा युक्त होना चाहिये। क्योंकि बिना तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के अभ्यास के कुछ नहीं। अभ्यास प्राप्ति के निमित्त तप करना चाहिये। ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये। विद्या प्राप्त करनी चाहिये। श्रद्धा होनी चाहिये।

सारांश-अभ्यास तभी पक्का होता है जब तप, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा से निरन्तर दीर्घकाल तक यत्न करे। अभ्यासी को तपस्वी ब्रह्मचारी विद्वान् और श्रद्धा युक्त होना चाहिये और दीर्घकाल तक निरन्तर परिश्रम करना चाहिये तप की महिमा को क्या वर्णन किया जावे श्री तुलसीदास जी कहते हैं:-

तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहुं जाय तप अस जिय जानी॥
तप बल रचै प्रपंच विधाता।
तप बल शंभु सकल जग त्राता॥
तप बल शंभु करहिं संहारा।
तप बल शेष धरहिं महि भारा॥

इत्यादि कहना पर्याप्त होगा। ब्रह्मचर्य की महिमा के निमित्त भीष्म पितामह का दृष्टान्त है। भीष्म को छोड़ कर और कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है। जिन्होंने भगवान् को अस्त्र गहाया "आज मैं हरि को अस्त्र गहै हौं" प्रसिद्ध है। विद्या के लिये संसार जानता है। बिना विद्या के भले बुरे का क्या ज्ञान हो सकता है! मूर्ख होना महान् पाप का फल है। बिना विद्या के मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं। श्रद्धा बिना संशय विपर्य्यय में आयु बीत जायगी अश्रद्धावान् का कोई गुरु नहीं। बिना गुरु के कोई कल्याण का मार्ग नहीं बता सकता। अतः अभ्यास के दृढ करने निमित्त तप, ब्रह्मचर्य विद्या और श्रद्धा की परमावश्कता है। परन्तु अभ्यास के पूर्व वैराग्य की आवश्यकता है।

## स्वामि त्रिपुरारी को

[ ले० श्री गोविन्द राम जी ]

मंजु मुखकंज वारो, सांवरो सलौनो प्यारो।
काम कोटि हारो, देख असुरारी को॥ १॥
चाप शर बाहु धारे, पंचानन चालवारे।
कारे कच घूंघरारे, बंसज तमारी को॥ २॥
मुनि यज्ञ रखवारी, सुता यक्षकेतु मारी।
जो तारी कपिनारी सो, नाशक सुरारी को॥३॥
अतुलित छबिधारी, देख मोहे नर नारी।
जो दोरी धनु भारी सो 'स्वामि त्रिपुरारी को'॥४॥

# चौथि भक्ति मम गुणगण, करहि कपट तजि गान।

[ ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी ]

कपट त्याग कर मेरे गुणों का गान करै यह चौथी भक्ति है।

मम गुण गण-प्रत्येक आत्मा कूटस्थ जो अविकारी है उसके गुण असंगादि हैं, कपट-ईश्वर जीव की भिन्नता वास्तविकी मानना यही कपट है इसी कपट को त्याग कर, गान-बारंबार अभेद रूप का चिंतन करे।

इसमें तुलसीदास जी का कथन ही प्रमाण है।

बंदौं राम नाम रघुवर को।
हेतु कृशानु भानु हिमकर को॥
गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदौं सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥

श्रुति भी प्रमाण है।

उदरमंतर कुरुते अथ तस्य भयं भवति, द्वितीयाद्वै भयं भवति

श्रीमद्भगवत् पूज्यपाद भाष्यकार श्री स्वामी शंकराचार्य्य जी ने गीता भाष्य अ० १३ श्लोक २ के अपने भाष्य में लिखा है जिसका अर्थ इस प्रकार है:-

क्षेत्रज्ञ तो ईश्वर ही है और क्षेत्रसंज्ञक जो देह है सो भिन्न है वह क्षेत्रज्ञ का विषय है यानी यह मेरा है इस प्रकार जानने योग्य है और मैं तो संसारी हूं, सुखी, दुःखी, मूढ़, उत्पन्न होता हूं, मरता हूं, वियोग युक्त हूं, क्षय को प्राप्त होता हूं और बूढ़ा होता हूं सुख दुःखादि मेरे ही धर्म हैं, जो आत्मा में आरोपण किये जाते हैं। अब क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के ज्ञान करके संसार की निवृत्ति करना मेरा कर्तव्य है। ध्यान करके क्षेत्रज्ञ ईश्वर का साक्षात्कार करके उसके स्वरूप में स्थित होके संसार को निवृत्त करूंगा इस प्रकार जो जानता है, औरों को इसी प्रकार का जो उपदेश करता है और कहता है कि मैं क्षेत्रज्ञ रूप ईश्वर नहीं हूं, ऐसा जो मानता है वह पण्डितों में अधम है क्योंकि (तत्त्वमसि, अयमात्माब्रह्म) तू ईश्वर ही है और यह जीवात्मा ब्रह्म है इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से जीव ईश्वर की एकता सिद्ध होती है और आप को वास्तव में ईश्वर से भिन्न मान के संसारी बनता है, इससे पंडिताधम है, संसारका प्रतिपादक जो शास्त्र और मोक्षका प्रतिपादक शास्त्र इन्हों को मैं सफल करता हूं आप मानता है, इससे वह आत्मघाती है। यदि कोई ऐसा कहे कि जब उसने अपनेको संसारी माना तो कर्मकांड प्रतिपादक शास्त्र सफल हुआ और जब उसने कहा कि ईश्वर से ध्यान करके मैं संसार को दूर करूंगा तो मोक्ष शास्त्र सफल हुआ, ऐसे आस्तिक श्रेष्ठ पुरुष को पंडिताधम और आत्मघाती कहना अनुचित है। इसका समाधान यह है, शास्त्र जिसको साक्षात् ईश्वर और ब्रह्म प्रतिपादन करता है और आप वास्तव में संसारी अपने को मान के पीछे ब्रह्मत्व भाव सिद्ध करता है तो इसके मत में ब्रह्म कल्पित हुआ। इससे आत्म स्वरूप को अन्यथा मानने से ही आत्मघाती और पंडिताधम हुआ, जो पुरुष थोड़ा भी भेद करता है उसको भय ही होता है ऐसे अनेक श्रुतियां कहती हैं। श्रुतियों के प्रमाण से भेदवादी पंडित कैसे हो सकता है? ऐसा पुरुष आप तो मूढ है ही और अन्य पुरुषों

को व्यामोह कराता है क्योंकि शास्त्र के अर्थ से संप्रदाय से रहित हो रहा है। श्रुत हानि, अर्थात् जैसा कुछ शास्त्र द्वारा अर्थ सुना जाता हो तिसकी जो हानि करे और अश्रुत कल्पना, अर्थात् जो शास्त्र में नहीं सुना हो उस अर्थकी अपने मनसे कल्पना करे वह पुरुष शास्त्र के अर्थ का संप्रदाय नहीं जानता है। क्योंकि 'तत्वमसि' इत्यादि महावाक्यों से तो जीव और ईश्वर की एकता प्रतीत होती है, तिसको वह पंडित नहीं मानता इससे श्रुत हानि हुई। अपने को अर्थात् जीव को वास्तव में संसारी ही कहता है इससे जीव और ईश्वर के भेद सिद्ध होने से अश्रुत कल्पना हुई, अर्थात् जो शास्त्र के सिद्धांत से विरुद्ध अर्थ को मानता है। इससे शास्त्र के संप्रदाय को उसने नहीं जाना। इसमें तुलसीदास जी का ही वचन प्रमाण है।

जो सबके रह ज्ञान एक रस।
ईश्वर जीवहिं भेद कह हूं कस॥

जो शास्त्रवित् यानी चारों वेद व अनेक शास्त्रों के जानने वाला भी होवे परन्तु मूर्ख के तुल्य ही त्याग करने योग्य है। सत्य ही कहा है।

पठन्ति चतुरो वेदान् शास्त्राण्यप्यनेकशः।
आत्म तत्वं न जानाति दर्वी पाकरसंयथा॥

कोई शंका करे कि भक्ति के प्रकरण में ज्ञान की बात प्रकरण विरुद्ध है। उसका उत्तर यह है कि जिन्होंने भक्ति के परम रहस्यको नहीं जाना है वे ऐसा कह सकते हैं परन्तु यथार्थ रीति से भक्ति के रहस्य को जानने वाले ऐसा नहीं कह सकते।

जाने बिनु न होय परतीति।
बिनु परतीति होय नहिं प्रीति॥
प्रीति बिना नहीं भक्ति दृढाई।
जिमि खगपति जल की चिकनाई॥

"स्व स्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते"।
ज्ञानहिं भक्तिहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव सम्भव खेदा॥
"जड चेतन हिं ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई"॥

यदि कोई इसमें भी विवाद करे कि प्रतिमादि के पूजने वाले कीर्तनादि के करने वालों से विरोध होगा क्योंकि वे तो इसी को परम भक्ति मानने वाले हैं। इसका समाधान यह है कि उनको वही परम कर्त्तव्य है क्योंकि जो देहाभिमानी पुरुष हैं उनके देहाभिमान को नष्ट करने वाली है, यह एक उपासना का अंग है वास्तवमें तो अनन्य भक्तिही परम भक्ति है भेद रखना अनन्य भक्ति नहीं है। अपनी अल्पज्ञता और ईश्वर की सर्वज्ञता दोनों उपाधियों का त्याग करके स्वरूप से एकता ही अनन्य भक्ति है। तुलसीदास जी के लेखानुसार तो चौथी भक्ति कर्मानुसार मम गुन और कपटतजि इन शब्दों से यही भाव प्रकट होता है कि जब ईश्वर सर्व व्यापक है और सृष्टि ही ईश्वर का स्वरूप है तो उससे अलग अपने को मानना यही कपट है और अभेद मानना यही मम-गुण है। यदि कोई कहे कि यहीं पराकाष्ठा होगई तो आगे पांच भक्तियों का निरूपण क्यों किया उनकी निरर्थकता हो जावेगी उसका उत्तर यह है कि यहां तक अदृढ भक्ति हुई आगे भक्ति की धारणा द्वारा परिपक्व हो ध्याता ध्यान ध्येय की त्रिपुटी केवल ध्येय रूप की प्राप्ति के लिये आगे वाली पांच भक्तियों का वर्णन है क्योंकि इस जीवात्मा को कोटान जन्मों का अभ्यास पड़ा हुआ होने से शीघ्र अपनी पृथकता का भान हो जाता है इससे आगे की भक्तियां परम उपयोगी हैं।

आनंद कंद श्री भगवान् ने गीता में कहा है,

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।

हे अर्जुन! मुझ परमेश्वर में अनन्य योग करके यानी अभिन्न समाधि करके अर्थात् भगवान् वासुदेव ही मेरी गति है, इस प्रकार की निश्चित अव्यभिचारिणी यानी कभी नहीं छूटने वाली जो बुद्धि उससे मेरा भजन करना और फिर ऐसा भजन कभी नहीं छूटे वही मेरी अव्यभिचारिणी भक्ति है, जिसका निरंतर रहना ही अनन्य भक्ति है।

पक्षपात रहित विचार करने पर तो उनको अपने २ इष्ट में और कीर्तनादि में अत्यंत प्रेम होगा क्योंकि ऐसा करने से प्रतिबंध रूप देहाभिमान नष्ट हो जावेगा क्योंकि यही महान् अनर्थ का हेतु है, इसीने दुःखागार रूपी संसार में डुबाया है, इसीने वासुदेव के स्वरूप से च्युत किया है ऐसी जो भ्रांति मुझको प्राप्त होगई है इससे अपने इष्ट की अनन्य भक्ति करके भ्रांति को हटाऊंगा, नहीं होते हुए भी सुखादि को अपने में मान बैठा हूं अब सबको छोड़ कर अपने इष्ट के कीर्तनादि से इस भ्रांति को नष्ट करूंगा और अपने निजधाम परम पद को प्राप्त हूंगा। यदि कोई दुराग्रह करे तो इस में किसी का वश नहीं है सत्य ही है पंचदशी में श्री स्वामी विद्यारण्य ने लिखा है।

प्रतिबंधो वर्तमानो, विषयासक्ति लक्षणः।
प्रज्ञामांद्यं कुतर्कश्च विपर्यय दुराग्रहः॥

अर्थ-विषयों में प्रीति के लक्षण, बुद्धि की मंदता, कुतर्क करना और उलटे अर्थ में हठ यह वर्तमान प्रतिबंध हैं। जो श्री भागवत् में "स्वलोक" का अर्थ गोलोक करते हैं यह उलटे अर्थ में हठ ही हुआ। सत्य कहा है, ध्यान दीप श्लो० ५३

केषांचित्स विचारोऽपि कर्मणा प्रतिबध्यते।
श्रवणाद्यापि बहुभिर्यो न लभ्य इति श्रुतेः॥

अर्थ-किसी को वह विचार ही कर्म से प्रतिबंध हो जाता है, क्योंकि 'बहुतों से तो सुनने पर भी वह प्राप्त नहीं होता' ऐसा श्रुति कहती है।

जब प्रयत्न करने वाले आस्तिक पुरुषों का यह हाल है तो विपर्यय दुराग्रह वालों का तो कहना ही क्या है।

इसलिये निम्न लेखानुसार संयम करके राम के गुणों में कपट छोड़कर प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

अपूर्ण

---

# गोसाईं जी की प्राकृतिक उपमाएं।

( ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी. ए. )

उपमा के चार अङ्ग उपमान, उपमेय, साधारण धर्म और सूचक शब्द होते हैं। सूचक शब्द का होना न होना बराबर है। जब कभी उदाहरण दिया जाता है तब ये चारों अंग प्रकट तो नहीं होते पर कल्पित किये जा सकते हैं। यदि ऐसी कुछ कल्पना अभीष्ट न हो तो उदाहरण का प्रयोजन ही क्या रह जावे?

जैसे अमफल घृत हित मथे पाप॥ ८५॥

यहां घी प्राप्ति के लिये जल का मथन करना निष्फल श्रम बताया गया है। उपमेय की कल्पना

करनी होगी कि ऐसा काम न करना चाहिये जिसमें सफलता न मिले। ऐसा ही कुछ आशय यहां निकाला है:-

काहे को फिरत मन, करत बहु जतन, कीजै कोटि उपाय।
त्रिविध ताप न जाय, मिलै न वारि मथत घृत, बिनु छीर (मथें) ॥ १९६ ॥

यों उदाहरण में उपमेय लुप्त रहता है। इष्ट उपमेय के लिये यथोचित उपमान खोजना उदाहरण खोजने के समान है। उदाहरण देने के लिये समझदार को सदा सतर्क रहना पड़ता है। उस सतर्कता की कल्पना उदाहरणों के मनन करने से आश्चर्य होता है। फिर कवि की बुद्धि सोने में सुगन्ध ला देती है।

मृगजल एक भ्रम का उदाहरण है पर यह भ्रम विशेष स्थिति में सभी को होता है। बुद्धिमान् मनुष्य तो समय पर वा कुछ काल भटक कर चेत जाता है पर बिचारा मृग भटक कर प्राण दे देता है। संसार रूपी भ्रम के निवारण के लिये इसका उदाहरण गोस्वामीजी ने कितने प्रकार से दिया है यह नीचे दिये उदाहरणों से प्रतिभासित होता है।

महा मोह मृग जल सरिता महं बोस्यो हौं बारहि बार ॥
२ कहि न जाय मृगवारि सत्य भ्रम तें दुःख होइ विशेषे॥
३ तजि हरि चरण सरोज सुधारस, रविकर जल लय लाओ ॥
४ शशि समीप रहि त्यागि सुधाकत।
रविकर जल कहं धावहिं ॥ २३८ ॥
५ बसै जो शशि उडगन, सुधा स्वादित कुरंग।
ताहि को भ्रम निरखि रवि कर नीर ॥१९७॥
अकथनीय मधुर शीतल जो पै मन सो रसपावै।
सो कत मृग न रूप विषय कारण निसि वासर धावै ॥"

६ मृग भ्रम वारि सत्य जिय जानी, तहं तू मगन भयो सुखमानी
तहं मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहां ॥
७ रविकर नीर बसै अति दारुण मकर रूप तेहि मांहीं।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥११०॥
बूड़ो मृगवारि खायो जेवरी (रस्सी) को सांप रे ॥७४॥
९ पायो केहि घृत विचारु हरिणि वारि मथत ॥ १३४॥
१० निज भ्रम ते रवि कर सम्भव सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहूं पार न पावै।१२३

ये सब उदाहरण केवल एक पुस्तक गोसाईं जी की विनय पत्रिका से उठाये गये हैं। एक ही आधार द्वारा कवि की कल्पना कितने रूपान्तर खड़ा कर देती है? ९ वें उदाहरण में हरिणि वारि कह दिया है जो मृग जल के लिये परिचित न होने पर भी पद्य के पाद पूरण में आवश्यक है। वैसे ही चौथे उदाहरण में 'कुरंग को भ्रम' आया है। भाषा को छोड़ भाव की ओर ध्यान देवें तो विचित्रता और बढ़ जाती है मृग जल को केवल भ्रम ही तक सीमित न रख कर उसमें स्नान करने की कल्पना अनुपम है उसमें नावें चलती हैं, मगर निवास करता है ये ९ वें १० वें और सातवें उदाहरण में अतिशयित कल्पना के निदर्शन हैं।

निद्रा और स्वप्न एक साधारण अनुभव हैं। यद्यपि निद्रा में अनुभव को स्मरण नहीं माना जाता तथापि हम आज सुख से सोये अच्छी नींद आई प्रयोग उसी अनुभव के द्योतक हैं। स्वप्न की देखी बातों का स्मरण रहता है। वह बहुधा चिरस्थायी नहीं होता तथा भ्रम स्वरूप होता है। इस एक उदाहरण को लेकर कवि की विविध कल्पनाएं मृग जलके भ्रम के समान असत्य होने पर भी भ्रम की

(सांसारिक भ्रम की) असत्यता प्रमाणित करने में सहायक होती है। उदाहरणों पर ध्यान किया जावे:-

१ कहँ बेद बुध तू तो बूझ मन मांहिरे।
होय दुःख सपने के जागे ही पै जाहि रे॥

२ तौ बहुकल्प कुटिल तुलसी से।
सपनेहु सुगति नलिखते॥

३ सपने पर बस परयौ जागि देखत केहि जाइ निहोरै।

४ जेहि उपाय सपनेहु दुर्लभ गति सोई निशिवासर कीजै॥

५ सपने व्याधि विविध बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करहिं जागे बिनु पीर न जाई॥

६ सपने नृप कहं घटै विप्रवध विकल फिरै अघ लागे।
वाजिमेध शत कोटि करै नहिं शुद्ध होय बिनु जागे॥

७ देखत ही आई बिरुवाई, जो तैं सपनेहु नाहिं बुलाई।

८ पावै सदा सुख हरि कृपा संसार आशा तजि रहै॥
सपनेहु नहीं दुख द्वैत दरशन बात कोटिक को कहै।

९ सुभग सेज सोवत सपने वारिधि बूड़त भय लागै॥
कोटिहु नाव न पार पाव सो जब लगि आपु न जागै।

स्वप्न की देखी सुनी अनुभूत बातें मिथ्या वा भ्रम होती हैं सही पर स्वप्न काल में उनकी सत्यता अबाधित रहती है। परलोकगत लोगों से इस लोक में भेंट होना तो असंभव है पर स्वप्न की क्षणिक सत्यता को सुख स्वरूप मान कर जी चाहता है कि परलोकगत जन से सपने में भेंट हो संतोष होवे। इतना होने पर भी स्वप्न का व्यापक मिथ्यात्व जीवों को आगे संसार का मिथ्यात्व बोध कराने के लिये उपस्थित किया ही जाता है। और गोसाईं जी ने प्रकृति को इस एक स्वप्न क्रिया को कितने रूपों में उपस्थित कर बुद्धि का चमत्कार अर्थात् अपने पथ तथा प्रयोजन के उपयुक्त बना लेने का वैलक्षण्य दिखाया है आगे थोड़े से और उदाहरण गोसाईं जी की विनय पत्रिका से प्रकृति अवलोकन के दिये जाते हैं। रामायण का जनता में आदर और समधिक प्रचार है उसके उदाहरण बहुधा परिचित होंगे। प्रत्येक उदाहरण पर कुछ कहा जा सकता है। पर विस्तार भय से संवरण करूंगा। पाठकों से विनय है कि प्रसंग के लिये मूल पुस्तक खोल कर देखें तो पूर्वापर प्रकरण अनुसंधान कर सकेंगे। पद्य की दी संख्याएं भिन्न २ संस्करणों में दो चार पद्य ऊपर वा नीचे पाया जाना संभव है।

अपूर्ण

---

# विश्वस्वरूप

[ ले० बहिन श्री जयदेवी जी ]

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्या वेशित चेतसाम्॥

सुशीला नाम की एक बहिन एक दिन अपने पति से इस प्रकार कहने लगी।

सुशीला-हे स्वामिन्! रात को दश बजे तक मैं उपरोक्त श्लोक का विचार करते २ निद्रासी में पड़ गई, और नीचे का दृश्य देखने लगी-

## सुशीला का विचित्र स्वप्न।

हे स्वामिन्! क्या देखती हूं कि लोक परलोक

का जो दृश्य जाग्रत स्वप्न में देखा करती हूं वह अचानक मेरी दृष्टि से बाहर है, उसके बदले अखंड अप्रमेय प्रकाश हो रहा है। न उसका आदि है न मध्य है और न अन्त है! पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, ऊपर, नीचे, इधर उधर, बायें, बायें, सिवाय उस प्रकाश के और कुछ नहीं है। प्रकाश ही प्रकाश सर्वत्र परिपूर्ण है। उस प्रकाश में से अनन्त किरणें निकल २ कर ऊपर नीचे जा रही हैं। अगणित हैं, गिनने में नहीं आतीं! तमाशा यह था कि मैं भी उस प्रकाश की एक किरण थी, परन्तु मैं अपने को उस प्रकाश से भिन्न नहीं जानती थी, किन्तु अभिन्न समझती थी, यानी अपने को प्रकाश रूप ही मानती थी! मुझे यह भी ध्यान नहीं था कि मैं जाग रही हूं, या स्वप्न देख रही हूं अथवा किसी अन्य अवस्था में हूं, हां, ऐसे परमानन्द का अनुभव कर रही थी कि उस आनन्द की उपमा किसी संसार के आनन्द से नहीं दी जा सकी! न उस प्रकाश की उपमा सूर्य चन्द्रादि यहां के किसी प्रकाश से ही दी जा सक्ती है! उस अवस्था के आनन्द की उपमा देने के लिये लोक में कोई दृष्टान्त नहीं है।

थोड़ी देर में यह दृश्य बदला और मैंने देखा कि मैं एक चित्ताकर्षक मनोहर बाग में हूं। उस बाग के कई मार्ग हैं। इसमें सन्देह नहीं है, कि बाग के उन विभागों की बहार में एक दूसरे से महान् भेद था, परन्तु थे सब बहारदार! वहां शीतल सुगन्धित वायु धीरे २ बहन कर रहा था, बहते हुये नीर और हरी २ दूब से आंखों में तरावट आती थी, कहीं २ लम्बे वृक्ष आसमान से बातें कर रहे थे, कई वृक्ष पत्ते फूल और फलों से झुके जा रहे थे। किसी में पुष्प और कलियां खिल रहीं थीं। उन पुष्पों की सुगंध मस्तिष्क को प्रफुल्लित करती थी, और फलों का स्वाद प्राणी में जान डालता था, रूप रंग की ऐसी विचित्रता थी, कि मन बुद्धि की समझ से बाहर है।

इस बाग में स्त्री पुरुष सैर करते फिर रहे थे, सब का रूप दिव्य था, शोभा, और यह छवि निरुपम थी, बोलते थे तो मानों फूल झड़ते थे, गाते थे तो सामगान कैसा आनन्द आता था, यहां मकान भी थे, मकान क्या बड़े २ महल थे, जिनकी कारीगरी और दिव्य रचना देख कर बुद्धि चकराती थी, इन महलों में लोग रहते थे, कहीं से चित्ताकर्षक, मोहक गाने की ध्वनि आती थी, कहीं से अलौकिक बाजों की निरुपम रागनियां सुनाई देती थीं कहीं हंसी चहल होती हुई देखने में आती थी! कहीं २ मनोरंजक व्याख्यान और कथायें होती थीं! सारांश यह है कि जिसको देखो आनन्द सागर में निमग्न था, न कहीं चिन्ता थी, न कहीं शोक था। दुःख का नाम तक भी नहीं था, हां! एक बात की चिन्ता उनको भी थी, जिससे उनका हर्ष, शोक में परिणत हो जाता था। वह चिन्ता यह थी कि यह खुशी का घर एक दिन छोड़ना है। इच्छा से नहीं किन्तु बलात्कार से छोड़ना पड़ेगा! हाथ पकड़ कर निकाल दिये जायेंगे! इस बाग में रहने वालों की संख्या अनंत थी! आश्चर्य यह था कि मैं स्वयं भी अपने को उन लोगोंके समान ही समझती थी। किन्तु हे स्वामिन्! उस ऊपर बताये प्रकाश का आनन्द कुछ निराला अर्थात् विलक्षण ही था यद्यपि यहां भी सब प्रकार सुख था, परन्तु पूर्व अनुभव किये हुवे आनन्द की अपेक्षा यह सुख मुझे तुच्छ प्रतीत होता था। इसके सिवाय आने जाने का भय

भी अनुक्षण लगा रहता था, इसलिये सुख के बदले दुःख का ही अनुभव होता था।

यह दृश्य भी बदला ! अब मैं क्या देखता हूं, कि घन बन है ! झाड़ झंकार के सिवाय उस बन में और कुछ दिखाई नहीं देता था। कहीं ऐसा अंधेरा था कि दिन में ही रात प्रतीत होती थी, कहीं पर खुली जगह थी, तो कांटेदार झाड़ियां पद २ पर पल्ला पकड़ लेती थी। और प्राणियों को चलने से रोकती थीं। कहीं २ ऐसी दलदलें थीं कि मनुष्य फस जाय तो निकलना कठिन होता था ! कहीं बन के पशु दहाड़ रहे थे, उनकी दहाड़ सुन दिल दहला जाता था कहीं ठौर के झुंड के झुंड घूम रहे थे, अकेले दुकेले का तो कहना ही क्या है, बरातों और पथिकों के बड़े से बड़े समूह को लूट लेते थे। सारांश यह है कि ऐसा भयानक बन था कि उसका ध्यान करने से अब भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस बन में लाखों करोड़ों स्त्री पुरुष मार्ग भूले हुये भटकते फिर रहे थे। उनके चेहरों पर मुर्दनी छाई हुई थी ! उनके इशारों से ही घबराहट के चिन्ह दिखाई देते थे उनकी बातों से मालूम होता था, कि महान् क्लेश में फंसे हुवे हैं। कोई भूखे प्यासे फिर रहे थे। कोई आधि व्याधियों की पीड़ा से पीड़ित होकर कराह रहे थे। कोई चलते २ ऐसा थक गये थे कि पैर उठाना ही दूभर था। कोई निराश होकर चिंता का चित्र बने हुवे थे। बहुतेरे दल-दलों में फसे हुवे चिल्ला रहे थे, बहुतेरों के पैर कांटों के मारे छलनी होगये थे, इसलिये चलने से हाथ धो बैठे थे ! अस्तु जिसको देखा दुखी ही देखा, सुखी कोई नहीं देखा। बन में अनेकों प्रकार के दुख उठा रहे थे परन्तु बन से बाहर निकलने का मार्ग नहीं मिलता था। इसलिये सब हैरान और परेशान थे।

यहां पर मैंने और कुछ लोग ऐसे देखे जिनकी बगल में पोथियों के बस्ते थे, ये लोग अपनी पोथियां सुना २ कर कहते थे। कि लोगो ? हमारे पीछे चले आओ हम तुमको मार्ग बतावेंगे ? परन्तु उनके पीछे जो लोग जाते थे, वे और भी मार्ग भूल जाते थे। बहुत से लोग चिकनी चुपड़ी बात बनाकर रस्ता बताने की प्रतिज्ञा-दावा, करते थे, उनकी चिकनी चुपड़ी बातों में आकर बहुत से भोले भाले लोग उनके साथ हो लेते थे, किन्तु वे लोग उन्हें कहीं का कहीं ले जाते थे ! बहुत से गेरु के कपड़े पहिने रंगे सयारों को देखा। उनके पीछे भी बहुत से लोग चले ! परन्तु सबके सब बन ही में खेत रहे। कोई कोई अपने बल भरोसे पर ही मार्ग ढूंढना चाहते थे, और चिर-काल से टक्करें मारते फिरते थे किन्तु जहां थे वहां से आगे नहीं बढ़ते थे। कोल्हू के बैल के समान रात दिन हिर फिर कर जहां थे वहीं के वहीं मिलते थे ! हां ! किसी बड़भागी स्त्री पुरुषों को सच्चे मार्ग दर्शी मिल जाते थे, तो वे बन से बाहर आकर सब प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर अपने भाग्य की सरा-हना करते थे।

यहां मेरे एक शोचनीय दृश्य और भी देखने में आया, कि बन में स्थान २ पर गहरे २ गढे थे। जिन को देख कर अन्धे कुवों को देखने के समान भय लगता था। कुवों के ऊपर पुराने वृक्ष थे। उन वृक्ष की शाखाओं में शहद की मक्खियों के छत्ते लटक रहे थे। और उन वृक्षों की मूल और शाखाओं को दो चूहे काट रहे थे। एक चूहा सफेद था, दूसरा चूहा काला था। उन गड्ढों के भीतर अजगर मुंह फाड़े बैठे थे कि कोई गिरे तो उसका ग्रास कर

जांय। फिर भी बहुतेरे प्राणी शहद के लालच से वृक्ष की शाखाओं में मुख खोले हुये लटक रहे थे। कभी२ एकाद शहद की बूंद उनके मुख में पड़जाती थी। मैं उनको देख कर बहुत विस्मित हुई, कि मक्खियां काटती हैं, पुराने वृक्ष हैं, बोदी शाखायें हैं, चूहे जड़ काट रहे हैं, नीचे अजगर मुख फाड़े हुये बैठा है। फिर भी शहद के लालच से यह भाग्य हीन जान पर खेल कर लटक रहे हैं! सच है लालच जीव की आंखे बन्द कर देता है। उन में एक से मैंने कहा, भाई? इस शहद पर धिक्कार दो और उचक कर कुवे में से निकल आओ! उसने ठंडी सांस लेकर कहा।

बहिन? हमारे में इतना सामर्थ्य और धैर्य कहां है, जो उचक कर बाहर निकल आवें। हमको तो इस शहद को मिठास में रस आता है। इसमें सन्देह नहीं है, कष्ट भी है। परन्तु 'बिन कंटक कहीं पुष्प नहीं' यह अर्ध छन्द समाप्त नहीं होने पाया था, कि चूहों ने शाखा काट दी और वह पुरुष धम से कुवे में गिर पड़ा। और अजगर उसे निगल गया। शोक।

हे स्वामिन् इस दृश्य से मेरे हृदय में ऐसी चोट लगी कि आंख खुल गई। एक साथ ही हड़ बड़ा कर घबड़ा कर उठ बैठी। भगवन्नाम का जप करने लगी। बार २ यही विचार आता है कि वह अप्रमेय प्रकाश क्या था! वे अनन्त किरणें, चित्ताकर्षक बाग, सुखी रहने वाले मनुष्य, वह भयानक बन, उसमें भटकने वाले पथिक, गहरे गढे, वृक्ष और वृक्ष पर लटकने वाले अभागे प्राणी कौन थे। जितना सोचती हूं अधिक आश्चर्य होता है! इस स्वप्न का मर्म जानने में नहीं आता। आपकी बाट देख रही थी, कि स्नानादि नित्य कर्म करके आवें तो आप से वृत्तान्त कहूं। यदि आप कुछ मर्म जानते हों तो मेरा संशय दूर कीजिये। अथवा कोई अन्य बता सकता हो तो उससे पूछिये। जैसे बने वैसे मेरा समाधान करिये।

सुशीला का पति अपने नित्य नियम से निवृत्त होकर अपने गुरु महाराज के दर्शन करने जाया करता था। आज सुशीला का स्वप्न सुन कर आश्चर्य में पड़ गया और मन में यह सोच कर कि गुरु महाराज से ही इसका मर्म खुलेगा। इसलिये वह अपनी पत्नि सुशीला, पुत्र और पुत्रवधू को साथ ले कर गुरु द्वारे में गया, और गुरुजी को सब वृत्तान्त सुनाया।

गुरु जी सुन कर मुसकराये और इस प्रकार कहने लगे।

गुरु-भाई! यह स्वप्न नहीं है, किन्तु भगवत् की प्रसन्नता के चिन्ह हैं. तुम दम्पति कृष्ण भगवान् के परम भक्त हो, भगवत् ने प्रसन्न होकर तुम्हारा उद्धार करने के लिये तुमको विश्व का और अपना स्वरूप दिखाया है। देखो एक प्रकाश, दूसरा बाग, और तीसरा बन ये तीन दृश्य जो देखने में आये. उन तीनों का वर्णन करता हूं। प्रथम बन से आरम्भ करता हूं।

बन-संसार बन है, इसमें भटकने वाले समस्त जीव हैं, यह जीव टक्करें मारते फिरते हैं। किन्तु निकलने का मार्ग इनको नहीं मिलता! हाय! हाय! करते हैं। रोते हैं, चिल्लाते हैं, अत्यन्त दुःखी हैं। फिर भी आश्चर्य यह है कि संसार छोड़ना नहीं चाहते! महान् आश्चर्य तो यह है, कि जीवों को उचित है, कि दुःख, रुदन और अपनी शोचनीय

दशा का शोक और पश्चात्ताप न करके एकान्त में बैठ कर विचार करें कि संसार असार है, आधि व्याधियों का घर है। इससे छूटने का क्या उपाय है। यह तो नहीं करते, किन्तु उसके उसी में फसे रहते हैं और रोया चिल्लाया करते हैं। दुनियां दुःखों का घर है। यह बात सब को अनुभव सिद्ध है।

वेदवेत्ता संसार को समुद्र से उपमा देते हैं, यह ठीक ही है क्योंकि आयु इस संसार समुद्र की नौका है, आयु रूप नौका ऐसी बोदी है कि इसकी स्थिति की आशा ही नहीं है, कि कब तक स्थित रहेगी, चाहे जब टूट सकती है! जैसे जहाज़ में बैठने वाले थोड़ी देर के लिये मिल जाते हैं, अपने २ बन्दर आने पर उतर २ चले जाते हैं, कोई जहाज़ में नहीं ठहरता, इसी प्रकार संसार के इष्ट संबंधियों का हाल है, कि एक के पीछे एक बहता बनता है। ठहरता कोई नहीं है! फिर किस से मित्रता करे और किस से शत्रुता करे! जब अपने ही दम का भरोसा नहीं है, तो किसी से राग और किसी से द्वेष करना व्यर्थ ही है। संसार रूप समुद्र में जीव रूप तरंगे प्रति क्षण उठती रहती हैं और बैठती रहती हैं। संसार रूप समुद्र का वार पार भी दिखाई नहीं देता! जैसे समुद्र में तरंगों के शब्द बड़ी २ दूर तक सुनाई देते हैं। इसी प्रकार संसार में नित्य नये झगड़ों की चिल्ल पुकार होती ही रहती है। कोई समय ऐसा नहीं है कि जिसमें झगड़े न होते हों! जैसे समुद्र में पवन से तोफान आता है, इसी प्रकार संसार में परस्पर का विरोध तोफान मचाने वाला वायु है। इस तोफानी वायु में कोई प्राणी बचा नहीं है, जैसे समुद्र में तोफान आने से सब भयभीत और शोकातुर हो जाते हैं. कोसों तक किनारा नहीं दिखाई देता। उसी प्रकार इस संसार में जिधर देखो उधर भय और निराश ही देखने में आती है अभय और आशा का कहीं पता नहीं है। जहाज़ में मल्लाह होता है। इसी प्रकार इस आयु रूप नाव का मल्लाह मृत्यु है, परन्तु यह मृत्यु रूप मल्लाह किसी को अपने इष्ट मनोवाञ्छित निर्भय स्थान पर नहीं पहुंचाता किन्तु सर्वदा भय के स्थानों में ही ले जाता है। शोक!

वेदवेत्ता इस संसार को घने जंगल से उपमा देते हैं, यह भी ठीक ही है। यह संसार भयभीत जंगल है, इसके चप्पे २ में भय है, इसके कोने २ में डर है। इस संसार वन के मित्र तो ठग हैं और यहां के शत्रु हिंसक पशु हैं, फिर किस का विश्वास करे और किस का भरोसा करे, कोई भी यहां पर विश्वास के योग्य नहीं है। जिसको देखो वही पथिक है, फिर रस्ते चलते से दिल लगाना मूर्खता ही है। पति, पत्नि, पुत्र, पुत्री, भाई, बहिन, माता पिता सब चार दिन के साथी हैं, फिर किससे प्रीति जोड़ें? संसार झाड़ झंकार वाला भयानक वन है। अज्ञानी जीव इस वन को अपना घर मानता है। कैसा आश्चर्य है? यहां दुःख रूपि वृक्षों की छाया ऐसी घनी है, कि सूझते हुवे को भी मार्ग दिखाई नहीं देता। इस संसार वन में मत मतान्तरों की असंख्य पगडंडियां हैं। उन पगडंडियों को देख कर पंडितों की बुद्धि भी चक्कर खा जाती है। मार्ग मिलना कठिन हो जाता है पैर २ पर निराशा की ठोकरें लगती हैं, फिर कोई किस आशा पर यहां सुख से जी सकता है। नहीं जी सकता! इस संसार वन में कहीं भी मार्ग नहीं मिलता। इस घने जंगल

में प्राणी प्रायः खेत ही आते है, कोई अपनी जान बचा कर नहीं लेजाता ! महा शोक !

सूक्ष्मदर्शी पुरुषों को यह दुनियां बवाल दीखती है औ यहां के झगड़े बला मालूम होते हैं। विद्वान इस प्रकार विचार करता है कि यह दुनियां मतलब की है, चाहे अमीर हो चाहे गरीब हो सब स्वार्थी हैं, जब अपना कोई स्वार्थ सिद्ध होता दीखता है तो शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। और जब स्वार्थ नहीं होता तो अपने भी गैर हो जाते हैं! धन जन और धरती इन तीनों ने विश्व भर को तंग कर रक्खा है, फिर कोई बिचारा अपने कल्याण का विचार किस प्रकार करे, कोई गदहे बैल के समान थैलियां ढोने लगता है, कोई दुर्जनों की चापलूसी खुशामद करता हुआ उनकी जूतियां पोंछता है, कोई धरती के लिये लड़ते२ आप ही धरती में घुस जाता है, फिर श्रेय के मार्ग की कौन खोज करे ? वाहरी ! दुनियां तेरी चाल अजब बेढंगी है। तुझ में दिन झगड़े और रात किस्से ही देखने में आये। कमर टूट गई है, आंखे फूट गई हैं, कान फूट गये हैं, नाक बैठ गई है, और जीभ तुतलाने लगी है, परन्तु दुनियां मन में बसी हुई है। लाभ हानि दोनों ही नाशवान् हैं, फिर भी उनके लिये दीन, हीन और मलीन हो रहे हैं! 'दुनियां दिल लगाने की जगह नहीं है। इस मर्म की बात सुनने को सब बहरे बन गये हैं!

हे ! भाइयो ? एकान्त बड़ी उत्तम वस्तु है, एकान्त की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है, शेष नाग अपने हजार मुखों से भी एकान्त के शुभ गुण वर्णन नहीं कर सकते, फिर दूसरा कैसे वर्णन कर सक्ता है। जैसे छोटे बच्चे को अपनी माता की गोद में आराम मिलता है। इसी प्रकार संसार के झंझटों से व्याकुल चित्त वालों को एकान्त में शान्ति प्राप्त होती है। प्राणी एकान्त में जाकर सब प्रकार की झंजटों से मुक्त हो जाता है। और उसका चित्त स्थिर, शान्त, सन्तुष्ट और तृप्त हो जाता है। एक विद्वान् का कथन है कि हे पुत्र ? तू दुनियां का कुत्ता क्यों बनता है ? इधर उधर श्वान के समान क्यों भटकता है ! यहां तुझे आराम कभी नहीं मिलेगा, यदि शान्ति चाहता है तो एकान्त में जा। जहां सैंकड़ों के मन को प्रसन्न करना है, वहां किसी का मन कैसे शान्त रह सकता है ? नहीं रह सकता ?

हे भाइयो ! इसलिये एकान्त की शरण लो और विचार करना आरम्भ करो, जो २ कष्ट देखने में आये हैं, वे सब दुनियां के कष्ट हैं। जो प्रत्येक जीव के प्रतिदिन देखने में आते हैं, अपनी बुद्धि अनुसार सब बातों का अर्थ लगा लो ! गहु का दृश्य विवेचन की अपेक्षा वाला है। यह अंधा कुवा घर है लटकने वाला जीव है, शहद विषयों का सुख है, विषय सुख नाना प्रकार के कष्ट बिना प्राप्त नहीं होता कष्ट मक्खियों का काटना है, चोदां शाखा मनुष्य की आयु है। सफेद और काले चूहे दिन रात हैं, दिन रात आयु को काट रहे हैं। शाखा रूप आयु कटते ही मनुष्य धम से नीचे गिर पड़ता है और अजगर रूप मृत्यु के मुख में चला जाता है।

इस स्थूल जगत में उपरोक्त जीव की दशा है। बाग जो देखने में आया वह स्वर्गादि ऊपर के लोक हैं, इनके विभाग भिन्न २ हैं, प्रत्येक विभाग में भोगों का आनन्द है, परन्तु वहां सबको जो एक चिन्ता लगी हुई है, वह यह है, कि जब भोग के कर्म क्षीण हो जाते हैं, तो लोग वहां से धक्के देकर निकाल दिये जाते हैं। इसलिये स्वर्गादि का आनन्द तुच्छ और

क्षुद्र है, विद्वानों की इच्छा का विषय नहीं है।

अप्रमेय प्रकाश सच्चिदानन्द ब्रह्म है असंख्य किरणें जीव हैं। जो आनन्द बड़भागिनी ने भोगा, वह आनन्द निरुपम और वास्तविक है, क्योंकि ब्रह्म के आनन्द के समान कोई दूसरा आनन्द नहीं है, विचार ने की बात यह है, किरणों और प्रकाश में परस्पर क्या संबन्ध है, किरणें प्रकाश से भिन्न नहीं हैं, किन्तु किरणें ही प्रकाश कहलाती हैं, जो जीव है, वही ब्रह्म है, और जो ब्रह्म है, वह ही जीव है, चिनगारी और अग्नि की उपमा जीव और ब्रह्म के विषय में श्रुति में दी है और ब्रह्म वेत्ताओं का भी ऐसा ही अनुभव है। जैसे चिनगारियां और अग्नि भिन्न नहीं है। इसी प्रकार किरणें और प्रकाश भिन्न नहीं है।

हे भावुको! बचपन में मेरी माता मुझे एक कहानी सुनाया करती थी, वह तुम्हें सुनाता हूं। ईश्वर ने मनुष्य, बैल, कुत्ता और गीध चार प्राणी उत्पन्न करे। उन चारों की चालीस २ वर्ष की आयु नियत की, बैल कहने लगा कि हे परमात्मा! चालीस वर्ष तक बोझा ढोना बहुत कठिन है, कृपा कर मेरी आयु आधी कर दीजिये। मनुष्य बोल उठा भगवन् मेरी आयु थोड़ी है, मैं आपका भजन किया करूंगा, इसकी आधी आयु मुझे दे दीजिये। भगवान् ने ऐसा ही किया फिर कुत्ता बोला 'हे भगवन्! चालीस वर्ष तक मैं भोंकते २ ही अधमरा हो जाऊंगा, मेरी उमर भी आधी कर दीजिये'। मनुष्य फिर बोल उठा 'हे दीनानाथ! आपके भजन करने को इस की आयु भी मुझे दे दीजिये'। भगवान् ने ऐसा ही किया। गीध बोला, हे करुणा कर! चालीस वर्ष तक भयंकर संसार देखना अच्छा नहीं लगता, मेरी भी आधी आयु कर दीजिये'। मनुष्य ने ईश्वर भजन करने को गीध की भी आधी आयु मांगली और भगवान् ने देदी।

हे वत्स! सबको अनुभव है कि चालीस वर्ष तक तो मनुष्य, मनुष्य के भोग भोगता है। पश्चात् भोग तो भोग नहीं सकता, किन्तु पुत्र पौत्रों के लिये बैल के समान लद २ कर बोझा ढोया ही करता है। पश्चात् जब बोझा ढोने योग्य भी नहीं रहता, तब कुत्ते के समान भौंकता रहता है, पुत्रादि कहना नहीं मानते, फिर भी भोंका ही करता है। पश्चात् जब भोंकने की सामर्थ्य भी नहीं रहती, तब ईर्षा की दृष्टि से देख कर कुढ़ा करता है। इस प्रकार आयु भर दुःख पाता है। परन्तु जिस कार्य के लिये विशेष आयु ली थी, वह नहीं करता? हे पुत्र! तू ऐसा मत कीजो। बीस वर्ष तक विद्या उपार्जन कीजो बीस वर्ष यदि इच्छा हो तो गृहस्थाश्रम कीजो। बीस वर्ष तक जैसे नन्दीगण ने शिवकी उपासना की थी! उसी प्रकार सगुण ब्रह्म की उपासना कीजो और बीस वर्ष तक जैसे कुत्ता अपने मालिक की सच्चे मन से सेवा करता है। उसी प्रकार तू भी निर्गुण ब्रह्म का चिंतवन कीजो! इस प्रकार यदि यथा काल और यथा योग्यता सगुण अथवा निर्गुण ब्रह्म का चिंतवन करेगा, तो तू अन्त के बीस वर्ष में गीध के समान दीर्घदर्शी हो जायगा।

हे भावुको! यह माता की बात मुझे कल कीसी याद है। तुम दोनों दम्पति चालीस वर्ष से ऊपर के हो, बेटा, बहू दोनों समर्थ हैं। उनको घर का काम सौंप कर, ईश्वर भजन बैल, कुत्ते और गीध कीसी आयु मत व्यतीत करो।

दम्पति ने गुरुजी की आज्ञा मान ली, घर की

स्त्रियां पुत्र और वधू को दे दीं, घर की एकान्त कोठरी में भजन करने लगे, दिन भर स्त्री पुरुष साथ २ विचार किया करते, और रात्रि में अकेले२ अपनी२ कोठरी में भजन ध्यान करते। बेटे बहु इन दोनों की इष्टदेवी, तथा इष्टदेव के समान पूजा सेवा किया करते। अन्त में सब सुखी हुये। इति शोभनम्। सच कहा है –

देते जग में चित्त जो सहते कष्ट अनेक।
लेते जे भगवत शरण पाते तत्व विवेक॥
पाते तत्व विवेक, कष्ट नहिं लेश उठाते।
रहते सुख से शान्त, अन्त अक्षय पद पाते॥
जपदेवी ? हरि भक्त, नींद सुख की हैं लेते।
जन्मत बारंबार, चित्त भोगन जे देते॥

---

# दीनों के भगवान्

[ले० श्री० प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम]

दीन हीन बल हीन भये हम ऐ कृष्ण! तेरी याद में।
सुनते हैं कि आते हो तुम नित दीन की फर्याद में॥१॥
दीनता जंजीर से जकड़े हुये हम इस समय।
नाथ तुम हो आर्तहर हम तो तुम्हारे हैं तनय॥२॥
जिउ का न कोई हो प्रभो कहते हैं उसके हो तुम्हीं।
दीन दुखिया देवकी वसुदेव के जन्मे तुम्हीं॥३॥
दुष्टों के दुष्टाचार से दुखियों के आर्त नाद से।
घर २ कंपाती थी मही वैधव्य घोर विषाद से॥४॥
भू रूप धर के धेनु का तब द्वार तेरे पर गई।
कातर्याई होकर आपने भू की विपति सब हर लई॥५॥
मथुरा में लेकर जन्म तुमने मार मारा कंस का।
दे राज्य उग्रसेन को पालन किया गो वंश का॥६॥
दीन दुखिया द्रौपदी की टेर सुन कर आपने।
होकर वसन का रूप टारा दुःख था प्रभु आपने॥७॥
युद्ध स्थल में कुन्तिपुत्र कुटुम्बियों को देखकर।
सौजन्यता से भ्रान्त मन तब क्लान्त होगया वीरवर॥८॥
संसार सागर की तरणि गीता प्रकट की आपने।
उत्सुक किया तब पार्थ को गीता के दिव्य प्रतापने॥९॥
दीनता से ही प्रभो! ध्रुवने तुम्हें अपना लिया।
और दीन हो प्रह्लाद ने जगमें विमल यश पालिया॥१०॥
दीनों के हो तुम नाथ! दीनानाथ कहलाते तभी।
दीनत्व छाया विश्व में फिर क्यों न 'प्रभु' आतेअभी॥११

---

# तत् पद विवेक

[ले० श्री० महात्मा राम आश्रम]

तत् पद का वाच्यार्थ माया विशिष्ट चैतन्य है, जिसको ईश्वर कहते हैं। उस तत् पद के वाच्यार्थ रूप ईश्वर का असाधारण लक्षण दो प्रकार का है। एक तटस्थ लक्षण और दूसरा स्वरूप लक्षण। "कदाचित्कत्वे सति व्यावर्तकं तटस्थलक्षणम्" जो लक्षण अपने लक्ष्य में थोड़े समय तक वर्तता हुआ अपने लक्ष्य को दूसरे पदार्थों से अलग करके प्रकट करे वह तटस्थ लक्षण कहा जाता है जैसे पृथ्वी का गंधत्व लक्षण तटस्थ लक्षण है। जैसे महाप्रलय में सर्व कार्य पदार्थों का नाश होता है तब पृथ्वी का गन्ध गुण पृथ्वी के परमाणुओं में नहीं रहता। न्याय शास्त्र में जिस क्षण में उस द्रव्य गन्ध आदि गुण उत्पन्न नहीं होते किन्तु दूसरे क्षण में

गुण उत्पन्न होते हैं। जैसे पृथ्वी का गन्धरूप गुण उत्पत्ति नाश काल में नहीं होता किन्तु मध्य काल में ही होता है, इसलिये पृथ्वी का गन्ध गुण कादाचित्क है (थोड़े समय तक होता है) और वह गन्ध रूप गुण अपने आश्रयभूत पृथिवी को दूसरे जलादिक पदार्थों से अलग करके प्रकट करता है। इसलिये व्यावर्तक है। यह पृथिवी का तटस्थ लक्षण कहा। इसी प्रकार तत् पदार्थ रूप ब्रह्म का भी सृष्टि स्थिति लय कारणत्व तटस्थ लक्षण है। सृष्टि शब्द से जगत् की उत्पत्ति जानना और स्थिति शब्द से जगत के पालन का ग्रहण करना और लय शब्द से जगत् के प्रलय को समझना।

यह तत् पदार्थ रूप ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा संहार का कारणत्व ब्रह्म में सर्वकाल में नहीं रहता किन्तु माया के अधिष्ठातृत्व काल में ही रहता है। इसलिये सृष्टि स्थिति लय का कारणत्व कादाचित्क है और सांख्य शास्त्र में तथा न्याय शास्त्र में जगत् के कारण रूप कल्पना किये हुये जो प्रधान और परमाणु आदिक हैं उनसे अपने लक्ष्य रूप ब्रह्म को पृथक् प्रकट करते हैं इसलिये व्यावर्तक हैं। इस प्रकर कादाचित्क तथा व्यावर्तक होने से सृष्टि, स्थिति, लय का कारणत्व ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। सृष्टी स्थिति लय कारणत्व ब्रह्म का तटस्थ लक्षण कहा इससे जगत् का कारण ब्रह्म है यह सिद्ध हुआ। कारण दो प्रकार का है। १-निमित्त कारण २-उपादान कारण "नियत पूर्व-वर्ती कारणम्" जो पदार्थ अपने कार्य की उत्पत्ति से पूर्वकाल में नियम करके विद्यमान हो वह उस कार्य का कारण कहा जाता है और "कार्यानुकूल व्यापारवत् कारणं निमित्त कारणम्" कार्य को उत्पन्न करने के अनुकूल ज्ञान इच्छा प्रयत्न रूप व्यापार वाला कारण निमित्त कारण कहा जाता है। जैसे घट रूप कार्य के बनाने के लिये ज्ञान इच्छा प्रयत्नरूप व्यापार वाला होने से कुम्हार निमित्त कारण होता है तैसे जगत् के उत्पत्ति पालन संहारादि रूप कार्य के ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न रूप, व्यापार वाला होने से ईश्वर भी जगत् का निमित्त कारण है। "कार्यान्वितं कारणं उपादान कारणम्" जो पदार्थ अपने कार्य में सर्वथा ओत प्रोत रहे वह उपादान कारण कहा जाता है। जैसे घट रूप कार्य में मृत्तिका ओत प्रोत रहती है इस लिये घट रूप कार्य का मृत्तिका उपादान कारण है। इसी प्रकार इस जगत् रूप कार्य का ब्रह्म उपादान कारण है। क्योंकि, यह जगत् रूप कार्य ब्रह्म से ही उत्पन्न हुवा है। श्रुति,

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि
जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसं विशन्ति" ॥

जिस कारण रूप ब्रह्म से यह सर्वभूत उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हुये जिस ब्रह्म द्वारा जीवन को प्राप्त होते हैं, और मृत्यु को प्राप्त हुये हुए यह सर्वभूत कारण रूप ब्रह्म में लय भाव को प्राप्त होते हैं तथा जन्माद्यस्ययतः जिस सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् कारण से इस आकाशादि सर्व जगत् के उत्पत्ति स्थिति संहार होते हैं वह ही ब्रह्म है। इत्यादि श्रुति सूत्र प्रमाणों से भी यह जगत् ब्रह्म से ही उत्पन्न हुवा है और अस्ति भाति प्रिय रूपता करके वह सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म इन सर्व पदार्थों में अनुगत अर्थात् ओत प्रोत है। ब्रह्म ही की सत्यता से इस जगत् की सत्यता है और ब्रह्म की ही चैतन्यता से यह जगत् प्रकाशमय है, तथा ब्रह्म के ही आनन्द

से यह जगत् आनन्दित हो रहा है। इसलिये इस जगत् का उपादान कारण ब्रह्म ही है।

जैसे घट रूप कार्य का उपादान कारण तथा निमित्त कारण भिन्न २ होता है वैसे ही इस जगत् रूप कार्य का भी उपादान कारण तथा निमित्त कारण भिन्न २ होना चाहिए परन्तु जगत् का उपादान कारण तथा निमित्त कारण एक ब्रह्म ही है भिन्न २ नहीं। यद्यपि लोक प्रसिद्ध घटादि कार्यों का निमित्त कारण तथा उपादान कारण भिन्न २ ही देखा जाता है तथापि जैसे मकड़ी अपने तन्तु रूप कार्य के लिये उपादान कारण तथा निमित्त कारण एक ही है तैसे ही इस जगत् रूप कार्य का उपादान कारण तथा निमित्त कारण एक ईश्वर ही है। श्रुति भी यही कहती है:-

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च तथाऽक्षरात्संभवतीहविश्वम्॥

जैसे ऊर्ण (मकड़ी) नाभि जन्तु अपने शरीर में से तन्तुओं को उत्पन्न करता है तथा अपने शरीर में ही लय कर लेता है वैसे ही यह सर्व विश्व अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न होता है और जैसे पूर्दीप्त अग्नि से अनेक विस्फुलिंग उत्पन्न होकर सामान्य अग्नि जो सर्व ब्रह्माण्ड में सामान्य रूप से व्याप्त है उस अग्नि में समा जाते हैं वैसे ही यह सर्व जगत् अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी ब्रह्म में लय हो जाता है। इस जगत् का उपादान कारण तथा निमित्त कारण एक ब्रह्म ही है। जगत् की उत्पत्ति स्थिति लय का कारणत्व ब्रह्म में सर्वकाल नहीं रहता किन्तु माया के अधिष्ठातृत्व काल में ही रहता है। जब जीवों के कर्म फल देने को सन्मुख आते हैं तब ईश्वर माया को आश्रय करके ऐसी इच्छा करता है।

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय सोऽकामयत।

सत्यानन्द स्वरूप चिदात्मा ने ऐसी इच्छा की, कि मैं बहुत रूप से प्रकट होऊं।

'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'।

वह परमात्मा इस जगत् को उत्पन्न करके स्वयं उसमें प्रवेश कर गया। यह सृष्टि स्थिति लय का कारणत्व ब्रह्म का तटस्थ लक्षण स्पष्ट ही प्रतीत होता है। ब्रह्म के तटस्थ लक्षण का ज्ञान होने पर भी जब तक ब्रह्म के स्वरूप लक्षण का ज्ञान न होगा तब तक ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं जाना जा सकता इसलिये स्वरूप लक्षण को कहते हैं।

"स्वरूपं सत् व्यावर्तकं स्वरूप लक्षणम्"॥

जो लक्षण अपने लक्ष्य का स्वरूपभूत हुवा अपने लक्ष्यार्थ को दूसरे पदार्थों से भिन्न करके प्रकट करे वह स्वरूप लक्षण कहा जाता है। जैसे पृथिव का पृथिवी पना स्वरूप लक्षण है पृथ्वी की पृथिवत्व जाती पृथ्वी में सर्वदा रहती है। पृथिवत्व जाती पृथ्वी से कदाचित् भी पृथक् नहीं होती और अपने लक्ष्य रूप पृथ्वी को दूसरे जलादिक पदार्थों से भिन्न करके प्रकट करती है इसलिये व्यावर्तक है। इसी प्रकार सच्चिदानन्द रूपत्व ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। सत्य, ज्ञान, आनन्द यह ब्रह्म के स्वरूप भूत हैं। किसी काल में भी ब्रह्म से अलग नहीं होते और अपने लक्ष्य रूप ब्रह्म को असत्य जड़ रूप जगत् से भिन्न भी जनाते हैं इसलिये व्यावर्तक हैं। यह सत्य, ज्ञान, आनन्द रूपता ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है।

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म आनन्दं ब्रह्म।

ब्रह्म सत्य रूप है, तथा आनंद रूप है। अनन्त नाम परिच्छेद का है वह परिच्छेद नहीं है जिसमें उसका नाम अनंत है। परिच्छेद तीन प्रकार का

होता है। देश परिच्छेद, २-काल परिच्छेद, ३-वस्तु-परिच्छेद।

जो पदार्थ एक देश में हो और दूसरे में नहीं हो वह देश परिच्छेद वाला होता है, और जो पदार्थ किसी काल में हो और किसी में न हो वह पदार्थ काल परिच्छेद वाला कहा जाता है, और जो पदार्थ किसी वस्तु में हो और किसी वस्तु में न हो वह पदार्थ वस्तु परिच्छेद वाला कहा जाता है, और ब्रह्म इन तीनों परिच्छेदों से रहित है। सर्व देशों में व्यापक होने से देश परिच्छेद वाला भी नहीं है, और सर्व काल में एक रस रहने से काल परिच्छेद वाला भी नहीं है और सर्व का आत्मा होने से वस्तु परिच्छेद वाला भी नहीं है। प्रकृति के कार्य रूप सर्व पदार्थ इन तीन परिच्छेदों वाले हैं, और जो पदार्थ इन तीन परिच्छेदों से रहित होता है वह सत्य ही होता है और ज्ञान रूप भी होता है तथा आनंद रूप भी होता है वह सत्य ज्ञानानंद रूप ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है।

---

# भजन

प्रभु तेरी लीला अपरम्पार ॥ टेक ॥
अखण्ड ब्रह्माण्ड रचे सब तेरे,
कोऊ न पावत पार ॥ १ ॥
सुर नर मुनिजन खोजत हारे,
पढ २ वेद विचार ॥ २ ॥
अगम निगम सब तुही पुकारे,
हे प्रभु सिरजन हार ॥ ३ ॥
चन्द्र सूरज दोऊ दीपक कीने,
अगम ज्योति निरंकार ॥ ४ ॥
अनहद शब्द बजत झनकार,
संतन प्राण अधार ॥ ५ ॥
नाना रूप धरो सब अन्तर,
निर्गुण सगुण अकार ॥ ६ ॥

२

तेरी बिगरी बात बन जाई ॥ टेक ॥
रंका तारो बंका तारो तारो सदन कसाई ॥ १ ॥
सुआ पढावत गणिका तारी तारी है मोरां बाई ॥२॥
ऐसी भक्ति करो घट भीतर छोड़ कपट चतुराई ॥३॥
सेवा बंदगी और अधीनता सहज मिले रघुराई ॥४॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो सत्गुरु बात बताई ॥४

३

हौं इक नई बात सुन आई ॥ टेक ॥
महरि यशोदा ढोटा जायो घर २ होत बधाई ॥ १ ॥
द्वारे भीड़ गोप गोपिन की महिमा बरणि न जाई ॥२
अति आनन्द होत गोकुल में रतन भूमि छवि छाई ॥३
नाचत तरुण वृद्ध अरु बालक गोरस कींच मचाई ॥
सूरदास स्वामी शुक शारद सुन्दर श्याम कन्हाई ॥५

४

कोऊ हरि समान नहीं राजा ॥ टेक ॥
यह भूपति सब दिवस चार के झूठे करत तकाजा । १
जन तेरा सो कभी ना डोले तीन भुवन पर छाजा ॥२
चेत अचेत मूढ मन मेरे करो हरि के काजा ॥ ३ ॥
हाथ पसार सके नहीं कोऊ बोल न सके अछाजा ॥४
कहत कबीर संशय भ्रम चूका ध्रुव प्रहलाद निवाजा ॥

५

श्याम बिन पलक न लागे मोरी ॥ टेक ॥
हरि बिनु मथुरा सूनी लगत है,
जैसे चन्द्र बिन रैन अन्धेरी ॥ १ ॥

पात २ वृन्दावन ढूंढी,
मैंने गोकुल ढूंढी घनेरी ॥ २ ॥
हरि की खातिर मैं जोगिन बनूंगी,
घर २ दूंगी फेरी ॥ ३ ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
जुग २ राखो चेरी ॥ ४ ॥

६

मंगल रूप यशोदानन्द ॥ टेक ॥
मंगल मुकुट कान मणि कुण्डल,
मंगल तिलक विराजे चन्द ॥ १ ॥
मंगल भूषण अंग सब सोहत,
मंगल मूरति आनन्द कन्द ॥ २ ॥
मंगल लकुट काख में चापै,
मंगल मुरली बजावत मन्द ॥ ३ ॥
धाम मनोहर मंगल दर्शन.,
होत मिट्यो दुख द्वन्द ॥ ४ ॥
मंगल ब्रजपति मंगल मधुबन,
मंगल यश गावत श्रुति छंद ॥ ५ ॥

७

बसे मेरे नैनन में नन्द नन्द ॥ टेक ॥
गौरवदन वृषभान नन्दिनी, श्याम वर्ण नन्द नन्द ॥१
गोलक रहे लुभाय रूप में, निरखत आनन्द कन्द ॥२
जय श्री मह युगल रस बंदो, क्यों छूटे दृढफंद ॥३

८

हमारे प्रभु एक तुम ही ओंकार ॥ टेक ॥
मात पिता गुरु बन्धु सहोदर धन विद्या परिवार।
मन बल बुद्धि प्राण तुमही हो नयनन में उजियार॥
हरि हीरा हरे रंग में दीसा पत्र पुष्प फल डार ॥ह० १
धरणी आकाश शशि और तारे बिजली में चमकार।
ऊपर निचे पर्वत सागर सब तुम अपरम्पार ॥ ह० २॥
तुम ही सूरज में हो गरजो बरषो अमृत धार।
एक धुनि हो तुम से सब को तुमरा वार न पार ॥० ३
सुन्दर शक्ति विकाश शुद्धता हमको दे दातार।
काम क्रोध मद लोभ निवारो परमानन्द दो प्यार ॥ह० ४

९

भजोरे मन शुद्ध सच्चिदानन्द ॥ टेक ॥
सकल ब्रह्माण्ड पुकारे जिनको अनन्त अपार अखण्ड।
पुष्प कुमार गगन में तारे बरणत सूरज चन्द।
सभी वस्तु की सुन्दरताई जितलावें गोविन्द ॥
ओंकार अज ज्योति स्वरूपा पूरण परमानन्द।

१०

हमारे प्रभु अवगुण चित्त ना धरो।
समदर्शी है नाम तुम्हारो चाहो तो पार करो ॥ टेक ॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब मिल गयो तब रूप एक भयो गंगा नम परो॥
एक लोहा पूजा में राख्यो एक घर बधिक परो।
ऊंच नची पारस नहीं जाने कंचन करत खरो॥
अबकी बेर मोय नाथ उबारो नहीं प्रण जात टरो।
यह माया भ्रम जाल निवारो सूरदास सगरो॥

११

विघन निवारण तुम हो गणेशा ॥ टेक ॥
पार्वती के पुत्र कहाओ, शिव कीपुरी के तुम हो नरेशा
एक दन्त दूजे सूंड विराजे, मूसे से वाहन गल बिच शेषा
धाना के प्रभु दास दामोदर, जैशिव जैशिव उज्वल भेषा

# भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

# विषय सूची


| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. वेदोपदेश | | ३२७ |
| २. भक्त बन्धु महांति | | ३२८ |
| ३. भगवद्भक्ति [ | ले० श्री० भोले बाबाजी | ३३३ |
| ४. गोपाल (कविता) | ले० श्री शम्भुदयाल 'नेह' | ३३८ |
| ५. वैराग्य और अभ्यास [ | ले० बा० राधेश्याम बी० ए० एल० एल० बी० | ३३९ |
| ६. स्वामी त्रिपुरारी को (कविता) [ | ले० श्री गोविन्दराम जी | ३४३ |
| ७. चौथी भक्ति मम गुणगण करहि कपट तजि गान [ | ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी | ३४३ |
| ८. गोसाईं जी की प्राकृतिक उपमाएं [ | ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए० | ४४५ |
| ९. विश्व स्वरूप [ | बहिन श्री जयदेवी जी | ४४७ |
| १०. दीनों के भगवान् (कविता) [ | ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी | ४५४ |
| ११. तत् पद विवेक [ | ले० श्रीमहात्मा राम | ३५४ |
| १२. भजन | | ३५७ |

REGD. No. L. 2077

# भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता | मूल्य | ॥=) |
| २. | भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ... | ,, | ।) |
| ३. | वेदोपनिषत् ... ... | ,, | ।) |
| ४. | अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ... ... | ,, | ।) |
| ५. | ज्ञानधर्मोपदेश ... ... | ,, | ।।।) |
| ६. | ज्ञान भक्ति योग संग्रह ... ... | ,, | =।।) |
| ७. | शब्द सदाचार संग्रह ... ... | ,, | ।) |
| ८. | सत्य शब्द संग्रह ... ... | ,, | ।=) |
| ९. | शब्दसंग्रह ... ... | ,, | ।।) |
| १०. | सारसंग्रह ... ... | ,, | =) |
| ११. | भाषा फक्किका प्रकाश ... ... | ,, | ॥) |
| १२. | भगवद्भक्तांक ... ... | ,, | ॥=) |
| १३. | भगवदंक ... ... | ,, | ॥।) |

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालोंको डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

**श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।**

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।